शोधादर्श

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

भ० महावीर स्वामी

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीर जी

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक : श्री अजित प्रसाद जैन
सह – सम्पादक : श्री रमा कान्त जैन

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ- २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -५०

वीर निर्वाण संवत् २५२६ जुलाई २००३ ई.

विषय क्रम

१.	गुरुगुण–कीर्तन : गुरुवर चैनसुखदास	श्री रमा कान्त जैन	१
२.	तथाकथित मल्लिकुमारी मूर्ति	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	५
३.	सम्पादकीय : तीर्थंकर पार्श्वनाथ (कुछ मौलिक चिन्तन)	श्री अजित प्रसाद जैन	८
४.	आभार		१७
५.	वैशाली : महावीर –युग में	डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव	१८
६.	भगवान महावीर और महात्मा गांधी	बा. ज्योतिप्रसाद जैन देवबन्दी	२३
७.	शुचिता–सौम्यता–भव्यता	डॉ. शशि कान्त	३१
८.	अकबर और जैन धर्म	श्री रमा कान्त जैन	३३
९.	हस्तिनापुर क्षेत्र की यात्रा	श्री अजित प्रसाद जैन	४१
१०.	धर्म का मूल–सम्यग्दर्शन	श्री ओम पारदर्शी	४३
११.	चिन्तन कण :		
	धर्म–अधर्म	श्री सुखमाल चन्द्र जैन	४५
	जीव का भी मरण होता है	श्री अशोक कुमार जैन	४६

१२. श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस	श्री रमा कान्त जैन	४८
१३. अमर ज्योति	श्री अंशु जैन 'अमर'	४६
१४. ग़ज़ल	ब्र. सीतल प्रसाद	५१
१५. शान्ति के दूत त्रिशला–पूत	श्री दयानन्द जड़िया	५१
१६. सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं	श्री रमा कान्त जैन	५२
१७. श्रेष्ठ श्रावक; दिव्यता देह की	डॉ. परमानन्द जड़िया	५२
१८. साहित्य सत्कार :		
परीक्षामुख; आप्तमीमांसा वृत्ति; जैन बद्री (श्रवणबेलगोला) के बाहुबली तथा दक्षिण के अन्य तीर्थ; जैन धर्म– आत्मा से पर्यावरण तक; विद्वत् विमर्श; जैन धर्म की मौलिक विशेषतायें;	श्री अजित प्रसाद जैन	५३
चन्द्रप्रभोदय; मानस विनोद; साधना के सोपान; इन्द्र धनुष के रंग; घरवाली	श्री रमा कान्त जैन	५६
१६. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र. : प्रगति प्रतिवेदन २००२–२००३	श्री अजित प्रसाद जैन	६०
२०. समाचार विमर्श : स्थानकवासी श्रमण संघ में फाड़; पार्श्व ज्योति का घूमता आइना; ब्राह्मण आर्यों ने नष्ट की थी सिंधु सभ्यता	श्री अजित प्रसाद जैन	६५
२१. भूल सुधार		६६
२२. समाचार विविधा		७०
२३. अभिनन्दन		७३
२४. शोक संवेदन		७८
२५. पाठकों के पत्र		७६

गुरुवर चैनसुखदास

प्रकृत्या शास्त्रेभ्यो नवनवपदार्थस्य चयने
दिवा वा रात्रौ यः परमसुखमेवानुभवति।
अकिंचिच्छात्राणां सकलविधशुश्रूषणविधौ
सदा दासः स श्रीचयनसुखदासो विजयते।।१।।

इयं संस्था पाणौ यदवधिगृहीता मतिमता
तदाद्यस्या दैनंदिनसमुदयो येन विहितः।
वरिष्ठा विद्वान्सः प्रतिसमममनेके च जनिता
श्चिरं जीव्यात् सोऽयं चयनसुखदासो गुरुवरः।।२।।

– वीर–वाणी (जयपुर) २२ जनवरी, १९६७' पृष्ठ १

(भावार्थ–जो अपने स्वभाववश दिन–रात शास्त्रों से नई–नई बातें चुनने में परम सुख का अनुभव करते हैं और अशेष छात्रों की समस्त प्रकार की शुश्रुषा करने में सदा दास की तरह लगे रहते हैं वह श्री चयनसुखदास विजयी हों ! जिन बुद्धिमान ने यह संस्था अपने हाथ में लेने की अवधि से अब तक इसकी दैनन्दिन उन्नति की और अपने समान अनेक वरिष्ठ विद्वान उत्पन्न किये वह गुरुवर चयनसुखदास चिरकाल तक जीयें !)

उपर्युक्त पद्यों में कविवर दामोदर आचार्य ने जिन गुरुवर चयनसुखदास का गुणगान किया हैं, वह डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य के शब्दों में 'उन्नत ललाट, बड़े–बड़े आकर्षक नयन, मझोला कद, कृशगात, स्वस्थ और पवित्र मूर्ति, दीप्त तेज, प्रसन्न मुख, आजानुबाहु एवं सादा भद्रवेश से मण्डित, व्यक्तित्व के धनी थे। उनके चित्रों से विदित होता है कि वह ऐनक लगाते थे और युवावस्था में बड़ी–बड़ी मूछें रखते थे और मारवाड़ी पगड़ी पहनते थे और कहते हैं कि वह छड़ी लेकर चलते थे। उनका जन्म माघ कृष्णा १५ वि.सं. १९५६ (२२ जनवरी, १८९९ ई.) को राजस्थान में जयपुर जिले के भादवा ग्राम में हुआ था। उनके पितामह का नाम लछमणराम और पिता का जवाहरमल था जो शास्त्र–मर्मज्ञ कुशल प्रवचनकार थे। माता का नाम धापूबाई था। बचपन में ही उनके एक पैर को लकवा मार गया जो जीवन भर बना रहा। पांचवे वर्ष में अक्षराभ्यास हेतु उन्हें

जैन पाठशाला में पं. मगनमल शर्मा के पास भेजा गया। तदनन्तर कुली के पं. रामचंद्र शर्मा के पास उन्होंने अध्ययन किया। तीव्र बुद्धि के कारण वह शीघ्र ही साथी छात्रों से आगे बढ़ गये और आठ–नौ वर्ष की उम्र होते–होते उन्होंने अच्छा ज्ञानार्जन कर लिया। साथ ही धर्म में भी अभिरुचि बढ़ी और मंदिर में दर्शन करना व शास्त्र सभा में जाना उनका नित्य कर्म हो गया। शास्त्र सभा में वह भजन भी सुनाते थे। बचपन में ही बड़े भाई मांगीलाल और चचेरे भाई केसरीमल की गुदली तलैया में डूब जाने से मृत्यु हो गई। १३ वर्ष की आयु में महामारी में उनके पिता कालकवलित हो गये। उनकी माँ ने बड़े धैर्य के साथ कपास लोढ़ने और कातने का कार्य कर अपना, उनका और उनके छोटे भाई सरदारमल का भरण पोषण किया। गया के सेठ केशरीमल सेठी, जो अक्सर भादवा आया करते थे, ने चैनसुखदास की तीव्र बुद्धि से प्रभावित हो उन्हें विद्याध्ययन हेतु गया बुला लिया। वहां भी वह नित्य शास्त्र–सभा में जाते और भजन बोलते जिससे उनकी ख्याति बढ़ गई। गया से वह कोडरमा अपने फूफा लादूराम बड़जात्या के यहां गये, किन्तु कुछ दिन बाद ही गया लौट आये। वह १६ वर्ष के थे कि सेठ जी ने उन्हें स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी पढ़ने भेज दिया। वहां उन्होंने ५ वर्ष तक अध्ययन किया। दर्शन शास्त्र में उनकी अच्छी गति थी। वहां रहते उन्होंने कोलकाता की न्यायतीर्थ और आचार्य प्रथम खण्ड परीक्षाएं उत्तीर्ण की। तर्कणा शक्ति अच्छी होने के कारण वह 'तर्क चन्द्र' नाम से पुकारे जाने लगे। छात्रों द्वारा निकाले जाने वाली संस्कृत पत्रिका का सम्पादन भी उन्होंने किया। मेधावी छात्र होने के नाते उन्हें छोटी कक्षा में प्रविष्ट हुए पं. कैलाशचंद्र शास्त्री सरीखे छात्रों का गुरु होने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। उस समय संस्कृत में उनकी वाक्‌पटुता का सोल्लास उल्लेख पं. कैलाशचंद्र जी ने अपने संस्मरण में किया है। एक बार कुचामन (मारवाड़) जाना हुआ। वहाँ उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हो सेठ गम्भीरमल पांड्या ने उन्हें अपने विद्यालय में अध्यापन हेतु रोक लिया। उस समय उनकी वय लगभग २०–२१ वर्ष की थी। कुचामन विद्यालय में लगभग १२ वर्ष सेवा कर उन्होंने उसे एक अनुकरणीय विद्यालय बना दिया। तदनन्तर ३० अक्टूबर, १६३१ को पं. जवाहरलाल शास्त्री की प्रेरणा पर जयपुर दिगम्बर जैन पाठशाला में प्रधानाध्यापक होकर आ गये और उसे अपने अथक श्रम से समुन्नत कर दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज बना दिया। स्वयं कुशल अयापक होने के साथ–साथ वह अपने साथी अध्यापकों के अध्यापन पर भी पूर्ण ध्यान देते थे और कालेज के प्रधानाचार्य होने के बावजूद छोटी से छोटी कक्षा को जब चाहा पढ़ाने पहुँच जाते

थे। वह संस्था की व्यवस्था से जुड़ी हर छोटी–बड़ी बात पर ध्यान देते थे। और सभी विद्यार्थियों को अपना अपार स्नेह। यह उनके कुशल अध्यापन, अनुशासन और नियंत्रण का सुफल था कि उनकी संस्था के छात्रों का परिणाम राजकीय परीक्षाओं में उत्तरोतर उत्तम होता गया और संस्कृत के सैकड़ों स्नातक उनके कार्यकाल में वहां से तैयार हुए। उस पाठशाला/कालेज से पढ़कर निकले हुए छात्रों को आगे भी विद्याभ्यास करने के लिये वह सतत प्रेरणा देते थे और स्वयं पढ़ाने के लिये सहर्ष प्रस्तुत रहते थे। इस सम्बन्ध में अपने संस्मरण में श्री अनूपचंद्र न्यायतीर्थ ने लिखा है कि जब उन्होंने सुरज्ञानीचंद लुहाड़िया और मुन्नालाल भौंसा के साथ न्यायतीर्थ परीक्षा की तैयारी हेतु उनसे पढ़ाने का अनुरोध किया किन्तु समय निकालने की कठिनाई बताई, तो उन्होंने कहा, "तुम लोग किसी भी समय पढ़ने आ सकते हो–कोई रोकटोक नहीं। रात को दो बजे भी आकर यदि मुझसे पढ़ना चाहो तो मैं पढ़ाने को तैयार हूँ।" निश्छल वात्सल्य से शिष्य–हित–साधन में रत रहने वाले, अगणित शिष्यों के गुरु, समाज और देश को अनेक उद्‌भट विद्वान प्रदान करने वाले पंडित चैनसुखदास जी को शिक्षा के क्षेत्र में की गई विशिष्ट सेवाओं हेतु भारत सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय शिक्षक पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था।

आदर्श शिक्षक ही नहीं, समाज सुधारक भी वह भारी थे। जिन दिनों खण्डेलवाल समाज में लोहड़ साजन समाज को अपने से बहिष्कृत करने का आन्दोलन चला था पं. चैनसुखदास जी ने उसके विरोध में पुरजोर आवाज उठाई थी और खोजकर सिद्ध किया था कि "लोहड़ साजन शुद्ध हैं–हमारे ही भाई हैं। इनको प्रक्षाल एवं रोटी–बेटी व्यवहार से अलग नहीं किया जा सकता।" यह आन्दोलन अखिल भारतीय स्तर पर चला था। पंडित जी ने **"जैन बंधु"** पाक्षिक पत्र निकालकर अपने मिशन में सफलता प्राप्त की थी। वह धार्मिक रुढ़ियों और अंध विश्वासों के भी विरोधी रहे और उनके सम्बन्ध में **'वीर वाणी'** पत्रिका में निर्भीकता से लेखनी चलाई। समाज के प्रभावशाली व्यक्तियों का दबाव और कोई भी प्रलोभन उन्हें अपनी मान्यताओं से नहीं डिगा सका। लेखनी और वाणी से उद्‌भूत उनके क्रांतिकारी विचारों ने उन्हें अगणित व्यक्तियों का श्रद्धाभाजन बना दिया था।

संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी एवं राजस्थानी भाषाओं पर पूर्ण अधिकार रखने वाले पं. चैनसुखदास जी का साहित्य–साधना के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा।

उनकी प्रेरणा से श्री महावीर जी में साहित्य शोध संस्थान की स्थापना हुई और वहाँ से अन्य उपयोगी प्रकाशनों के साथ–साथ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूचियां कई खण्डों में प्रकाशित हुईं। उन्होंने **जैन दर्शन सार, भावना विवेक, निक्षेपचक्र, पावन प्रवाह** और **दार्शनिक के गीत** नामक मौलिक कृतियों का प्रणयन किया। **अर्हत प्रवचन, प्रवचन प्रकाश, संयम प्रकाश** और **प्रद्युम्न चरित** का सम्पादन तथा **सर्वार्थ सिद्धिसार** की संक्षिप्ति उन्होंने की। **जैन दर्शन, जैन बन्धु, वीर वाणी, महावीर–स्मारिका** प्रभृति पत्रिकाओं के सम्पादन का श्रेय उन्हें रहा। उनके सैकड़ों निबन्ध, कहानियां तथा देश व समाज के जनमानस को आन्दोलित करने वाले सैकड़ों सम्पादकीय लेख व टिप्पणियां विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। पत्रकारिता उनके स्वभाव में समायी हुई थी। स्व सम्पादित पत्रिकाओं के अतिरिक्त **कल्याण, दैनिक एवं साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स, राष्ट्रदूत** और **राजस्थान पत्रिका** आदि में प्रकाशित अपने लेखों के माध्यम से वह समाज एवं राष्ट्र के बुद्धिजीवियों के सम्पर्क में निरन्तर बने रहे। उनके ६८वें जन्मदिन पर पं. भंवरलाल न्यायतीर्थ, डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल और डॉ. ताराचंद बख्शी के सम्पादकत्व में **'वीरवाणी'** का विशेषाक जनवरी १९६७ में प्रकाशित हुआ था जिसमें ६० से अधिक विद्वानों, समाजसेवियों ने पंडित जी की साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का स्मरण करते हुए उनका हार्दिक अभिनंदन किया था।

आजीवन क्वारे रहे, सरल–सादा जीवन जिये, भद्रपरिणामो उदार–व्यापक दृष्टिवाले पं. चैनसुखलाल जी की जीवनयात्रा जयपुर में २६ जनवरी, १९६९ को ७० वर्ष ४ दिन की वय पा पूर्ण हुई।

जनमानस को अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के सुमनों से सुरभित करने वाले उन पण्डित, पत्रकार, समाज सुधारक, साहित्य–मनीषी, गुरुवर चयनसुखदास जी के पादारविन्द में अपना मस्तक आज भी श्रद्धा से नत है।

– रमा कान्त जैन
ज्योति निकुंज, चारबाग,
लखनऊ

तथाकथित मल्लिकुमारी मूर्ति

– डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

राज्य संग्रहालय लखनऊ की एक विशेष विचित्र मूर्ति (जे. २८८) इधर कुछ समय से एक भ्रांति को जन्म देने का कारण बनती जा रही है। हरित–सी आभा लिए क्वचित् चिकने सलेटी से पाषाण की लगभग डेढ़ फुट ऊंची यह मूर्ति पादपीठ पर पद्मासन ध्यान–मुद्रा में स्थित एक तरुण स्त्री की है, जो सर्वथा नग्न है। गोद में बांयी हथेली रखे हुए, सीधी तनी हुई बैठी है, शरीर यष्टि पुष्ट, सुडौल और तरुण प्रतीत होती है। स्तनयुगल पुष्ट हैं, किन्तु उनमें से एक खंडित है। मूर्ति शिर विहीन है, पीछे ग्रीवामूल से नीचे नितम्बों के मध्य पर्यन्त सुघड़ गुंथी हुई वेणी चली गई है। मूर्ति पर कहीं भी किसी प्रकार का कोई लेख अथवा अन्य चिह्न नहीं है, किन्तु पादपीठ के सामने का मध्यभाग कुछ खुरचा या घिसा गया लगता है, जिससे यह अनुमान किया जाता है कि सम्भव है वहां कोई लेख अथवा चिह्न आदि रहा हो। मूर्ति कहां से और कब प्राप्त हुई, इसका लेखा संग्रहालय में नहीं है। शिल्प की दृष्टि से यह मूर्ति हजार आठ सौ वर्ष प्राचीन भी हो सकती है। संग्रहालय में यह मूर्ति अनिश्चित–अज्ञात कोटि में रही–उसे चीन्हने या परम्परा विशेष के साथ सम्बद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया गया।

किन्तु, १०–१५ वर्ष पूर्व बड़ौदा के डॉ. उमाकान्त पी. शाह जब संग्रहालय में आये और उन्होंने इस मूर्ति को देखा तो कह दिया बताया जाता है कि यह जैन तीर्थंकर मल्लि की मूर्ति है। हमारे सामने जब यह बात आई और हमने संग्रहालय में ज़ाकर मूर्ति को ध्यान से देखा तो हमें डाक्टर शाह का अनुमान भ्रमपूर्ण प्रतीत हुआ। जनवरी १६७२ में इसी संग्रहालय में जैनकला संगोष्ठी एवं जैनकला प्रदर्शनी आयोजित की गई थी। डॉ. शाह भी पधारे थे। प्रदर्शनी के उद्घाटन के पश्चात् जब आमंत्रित दर्शक कलाकृतियों को देख रहे थे, तब भी हमने डॉ. शाह को उक्त मूर्ति के सम्मुख खड़े लोगों को यह बताते सुना कि वह तीर्थंकर मल्लि की मूर्ति है। हमने आगे बढ़कर कहा कि उनका अनुमान भ्रमपूर्ण है, यह मूर्ति जैन परम्परा की नहीं है। बात आई गई हो गई, किन्तु ऐसा लगता है कि डॉ. शाह द्वारा व्यक्त किया गया अनुमान लोगों के मन में अटक गया है क्योंकि इस मूर्ति का परिचय बहुधा जैन तीर्थंकर मल्लि की मूर्ति के रूप में दे दिया गया है। और, इस भ्रान्ति का एकमात्र आधार यह है कि जैनों के श्वेताम्बर सम्प्रदाय की प्रचलित मान्यता के अनुसार १६वें तीर्थंकर मल्लिकुमारी नामक स्त्री थे।

परन्तु राज्य संग्रहालय लखनऊ की विवक्षित शिर–विहीन नग्न स्त्री मूर्ति न केवल किसी जैन तीर्थंकर की मूर्ति नहीं है बल्कि जैन परम्परा से भी उस मूर्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है, इसमें निम्नोक्त हेतु हैं–

(१) दिगम्बर परम्परा के सम्पूर्ण साहित्य एवं अनुश्रुतियों में कहीं भी ऐसा कोई संकेत नहीं है कि १६वें तीर्थंकर मल्लिनाथ स्त्री थे। इस परम्परा की मान्यता के अनुसार तो सभी तीर्थंकर पुरुष ही होने हैं,कोई भी तीर्थंकर स्त्री नहीं होता– वर्तमान कल्प–काल के ऋषभादि महावीर पर्यन्त चौबीसों तीर्थंकर पूर्णतया पुरुष ही थे। तीर्थंकर मल्लिनाथ भी पुरुष थे और उनकी गणना पंचबालयति–पांच बालब्रह्मचारी या कुमार अवस्था में प्रवर्जित तीर्थंकरों में की जाती है।

(२) श्वेताम्बर परम्परा के भी प्राचीनतर साहित्य में १६वें तीर्थंकर को 'कुमार पब्बज्जित' (कुमार अवस्था में प्रवर्जित, कुमारी अवस्था में नहीं) कहा गया है, उन्हें पुरुष ही सूचित किया गया है और बहुधा 'मल्लिनाथ' नाम से उनका उल्लेख हुआ है। इस परम्परा के परवर्ती साहित्य में उन्हें मल्लि राजकुमारी के नाम से प्रदर्शित किया गया है, और उस परम्परा की वर्तमान में प्रचलित मान्यता भी प्रायः यही है।

(३) दिगम्बर परम्परा के अनुसार सभी तीर्थंकर दीक्षोपरान्त सर्वथा नग्न दिगम्बर रहे। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और अन्तिम तीर्थंकर महावीर तो अचेल या नग्न दिगम्बर रहे, किन्तु बीच के अन्य बाईस तीर्थंकर सचेल या सवस्त्र रहे। तीर्थंकर मल्लिनाथ भी उक्त सचेल तीर्थंकरों में ही हैं।

(४) मध्यकाल से पूर्व की जितनी भी अर्हत्, जिन या तीर्थंकर प्रतिमाएं उपलब्ध हैं वे प्रायः सब ही दिगम्बर हैं, चाहे उनमें से किन्हीं के प्रतिष्ठाकार कोई श्वेताम्बर आचार्य रहे या दिगम्बराचार्य। और वे दिगम्बर प्रतिमाएं दोनों ही सम्प्रदायों में समान रूप से पूजनीय–उपासनीय रही आयीं। मध्यकाल में दिगम्बर आम्नाय की जिनप्रतिमाओं से भेद करने के लिए श्वेताम्बर परम्परा में ऐसी जिन मूर्तियां भी निर्मित और प्रतिष्ठित होने लगीं, जो वैसे तो नग्न होती थीं किन्तु पादपीठ पर सामने की ओर लंगोट या चिह्न बना दिया जाता था, खड्गासन हुई तो सामने की ओर लटकता हुआ लंगोट बना दिया जाता। कालान्तर में कृत्रिम आंखें चढ़ाने व मुकुट, आंगी आदि से अलंकृत करने की जो प्रथा चली वह सब ऊपर से किया जाता है–पाषाण या धातु में नहीं बनाया जाता, मूल मूर्ति में ये वस्त्राभरण आदि अंकित नहीं होते।

(५) जैन प्रतिमा विधान विषयक शास्त्रों, प्रतिष्ठा पाठ आदिकों में सर्वत्र अर्हंत, जिन या तीर्थंकरों की प्रतिमा को पुरुषरूप में ही बनाने का विधान है, स्त्री रूप में बनाने का कहीं नहीं है। तीर्थंकर प्रतिमा पर उक्त तीर्थंकर का नाम या लांछन विशेष उत्कीर्ण रहता है और वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न भी बना रहता है—इस प्रतिमा में न कोई नाम है, न किसी तीर्थंकर का लांछन है और न श्रीवत्स ही अंकित है। अतएव यह किसी भी जैन तीर्थंकर की मूर्ति नहीं हो सकती।

(६) श्वेताम्बर परम्परा की तीर्थंकर मल्लिनाथ की प्रतिमाएं भी पुरुषरुप में ही प्राप्त होती हैं। कदाचित् किसी प्रतिष्ठापक ने शास्त्रीय विधानों की अवहेलना करके स्त्री मूर्ति भी बना दी होती तो वह सवस्त्र होती, सर्वथा नग्न नहीं हो सकती थी, क्योंकि तीर्थंकर मल्लि को उक्त परम्परा में सचेल या सवस्त्र रहा माना है।

जैन परम्परा की चौबीस यक्षियों, सरस्वती आदि विद्यादेवियों तथा अन्य भी जिनदेवियों की मूर्तियां बनती है या बनीं है, वे सब वस्त्राभूषण आदि से युक्त बनती है, कोई निर्वस्त्र नग्न नहीं है, और किसी भी जैन देवी के साथ, प्रतिमाशास्त्र की दृष्टि से, इस मूर्ति का कोई भी साम्य नहीं है, जैन आर्यिकाएं, तपस्विंनी साध्वियां भी, चाहे वे दिगम्बर सम्प्रदाय की हों अथवा श्वेताम्बर सम्प्रदाय की, प्रायः पूर्णतया सवस्त्र होती हैं, निर्वस्त्र कोई भी नहीं। अतः यह मूर्ति किसी जैन तपस्विनी साध्वी की भी नहीं हो सकती।

अस्तु, राज्य संग्रहालय लखनऊ की वह तथाकथित मल्लि मूर्ति किसी जैन तीर्थंकर की मूर्ति नहीं है। वह किसी अन्य जैन देवी—देवता या साध्वी की भी मूर्ति नहीं है। दिगम्बर परम्परा के साथ तो उसका कोई सम्बन्ध है ही नहीं, श्वेताम्बर परम्परा के साथ भी, जहां तक हमें ज्ञात है, उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उसे तीर्थंकर मल्लि की मूर्ति, अथवा किसी भी जैन तीर्थंकर की मूर्ति या जैन परम्परा से सम्बद्ध मूर्ति कहना अयथार्थ, भ्रान्तिपूर्ण एवं भ्रामक है।

शैव परम्परा में शिव की प्राप्ति के लिए पार्वती के दुर्द्धर तपश्चरण के वर्णन मिलते हैं, और देवी का एक रूप दिगम्बरी भी बताया है। तान्त्रिक मत के वामाचार में भी दिगम्बरी की उपासना की जाती है और भैरवीचक्र में किसी तरुण स्त्री को नग्न करके उसमें देवी का आह्वान किया जाता है। अतः हमें तो ऐसा लगता है कि विवक्षित मूर्ति या तो तान्त्रिक सम्प्रदाय की है, अथवा शिव प्राप्ति के लिए दिगम्बरी तप में तपस्यारत पार्वती की है।

[जैन संदेश (शोधांक) ३६, (१७ जून, १९७६) से साभार]

सम्पादकीय

तीर्थंकर पार्श्वनाथ (कुछ मौलिक चिन्तन)

(श्रावण शुक्ल ७ (४ अगस्त २००३) को भगवान पार्श्वनाथ की मोक्ष कल्याणक जयन्ती के उपलक्ष्य में)

काल– भगवान महावीर स्वामी से २५० वर्ष पूर्व हुए जैन धर्म के २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ एक ऐसे ऐतिहासिक महापुरुष हैं जिनका अस्तित्व असंदिग्ध है। पौराणिक कथ्यों के अनुसार वे भगवान महावीर से २५० वर्ष पूर्व हुए थे। सामान्यतया २५० वर्ष की यह अवधि भगवान पार्श्वनाथ के मोक्ष से भगवान महावीर के जन्म तक की मानी जाती है। किन्तु हमारे विचार में इस २५० वर्ष की गणना भगवान पार्श्वनाथ के मोक्ष से भगवान महावीर के धर्म शासन प्रवर्तन (श्रावण कृष्णा प्रतिपदा, ५५७ ई.पू.) की तिथि तक मानना अधिक तर्कयुक्त होगा। इस प्रकार भगवान पार्श्वनाथ का जन्म ६०७ ई. पू. तथा मोक्ष ८०७ ई. पू. मानना होगा।

जैन वाङ्.गमय में भगवान पार्श्वनाथ का क्रम बद्ध पौराणिक जीवन वृंत्त प्रमाणिक रूप से सर्वप्रथम भगवज्जिनसेनाचार्य के सुशिष्य आचार्य गुणभद्रकृत उत्तर पुराण (रचना–६३३ ई.) में उपलब्ध होता है। अधिकांश परवर्ती संस्कृत, अपभ्रंश व भाषा के पुराणकारों ने उसे ही अपना आधार बनाया है।

कुलवंश–

उत्तरपुराण के अनुसार "इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र संबंधी काशी देश में वाराणसी नाम का एक नगर था। उसमें काश्यपगोत्री राजा विश्वसेन राज्य करते थे। (कुछ अन्य पुराणकारों ने उनके पिता का नाम अश्वसेन, हयसेन आदि भी दिया हैं)। पौष कृष्ण एकादशी के दिन अनिल योग में वह पुत्र उत्पन्न हुआ। वे लक्ष्मीवान उग्रवंश में उत्पन्न हुए थे (लक्ष्मीवानुग्र वंशज – सर्ग ७३–श्लोक ७५)।"

तिलोयपण्णति में प्रथम बार पार्श्व के वंश का उल्लेख प्राप्त होता है और उसमें भी उनके वंश का नाम उग्रवंश ही बताया गया है। पुष्पंदंत ने भी उन्हें उग्रवंशीय ही कहा है।

इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि वैशाली के लिच्छवि क्षत्रियों के आठ कुलों में उग्र वंश एक प्रमुख वंश था तथा काशी देश भी वैशाली के समान ही लिच्छवि क्षत्रियों का एक प्रमुख केन्द्र था। काशी देश में भी लिच्छवि गणराजाओं

के गणतंत्रात्मक राज्य थे तथा वाराणसी उनकी राजनगरी थी। भगवान पार्श्वनाथ के पिता महाराज विश्वसेन काशी देश के गणराजाओं के कदाचित् गणाधिपति महाराजा थे। वैशाली के विध्वंस तथा लिच्छवियों के वज्जिसंघ की पराजय के बाद भी काशी में लिच्छवि गणराजाओं की परम्परा चलती रही थी तथा भगवान महावीर के निर्वाण के समय काशी देश के ९ लिच्छवि गणराजा भी पावा में मौजूद थे और उन्होंने भगवान महावीर के निर्वाण कल्याणक में भाग लिया था।

लिच्छवि क्षत्रियों के उग्र वंश को अग्र वंश भी कहा गया है तथा अग्रवाल जाति के मूल पुरुष महाराज अग्रसेन भी अग्र या उग्रवंशी लिच्छवि क्षत्रिय थे जिन्होंने अपने ही वंश के १७ अन्य लिच्छवि कुमारों के साथ सुदूर पश्चिम में जाकर वैशाली गणराज्य के अनुरूप अग्रोहा में गणतंत्रात्मक राज्य की स्थापना की थी। उग्रसेन (अर्थात् उग्रवंशी) आज भी अग्रवाल जैनों में एक बहु प्रचलित पुरुष नाम है। यह भी संभावना है कि जब उग्रवंशी लिच्छवि क्षत्रियों ने अहिंसामूलक वणिक वृत्ति अपना ली हो तो वे वैश्य वर्ण में परिगणित किए जाने लगे हों और अग्रवाल जाति के नाम से जाने जाने लगे हों।

सुप्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता तथा प्राचीन भारतीय इतिहास के अधिकारी विद्वान स्व. डा. वासुदेव शरण अग्रवाल ने महाराज अग्रसेन का एक नाम (भगवान महावीर के समान) वैशालिक भी बताया है अर्थात् वे भी वैशाली से निकले एक लिच्छवि क्षत्रिय थे। अग्रवाल जाति के लिए यह गौरव की बात है कि भगवान पार्श्वनाथ जैसे महापुरुष भी उनके पूर्वज थे। अगवाल जाति पर जैन धर्म एवं श्रमण संस्कृति की अहिंसात्मक जीवन शैली का प्रभाव प्रारंभ से ही परिलक्षित होता है। अग्रवाल जैन जाति में भगवान पार्श्वनाथ प्राचीनकाल से ही सर्वाधिक इष्ट तीर्थंकर रहे हैं तथा अग्रवाल जाति बहुल क्षेत्रों में भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमाओं की बहुसंख्यक प्रतिष्ठापना में अग्रवाल जाति का प्रमुख योगदान रहा है। वाराणसी सुदूर अतीतकाल से ही उग्रवंशी क्षत्रियों तथा कालान्तर में अग्रवाल जाति का एक प्रमुख केन्द्र चला आ रहा है तथा वहां कितने ही ऐसे परिवार हैं जो न मालूम कितनी पीढ़ियों से वाराणसी या उसके आसपास के क्षेत्र में बसे हुए हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का भी एक ऐसा ही अग्रवाल परिवार था।

जलते नाग की कथा–

भगवान पार्श्वनाथ के कुमार काल से जुड़ी इस बहु प्रचलित कथा का **उत्तर पुराण** में निम्न प्रकार वर्णन किया गया है–

'१६ वर्ष की आयु में जब भगवान नवयौवन से युक्त हुए तो क्रीड़ा हेतु नगर

के बाहर आश्रम वन में गए। (वाराणसी नगरी के बाहर के वन का वह भाग जहां गंगा के निकट तापसों के आश्रम थे)। वहां उनके नाना महीपाल अपनी रानी के वियोग से तपस्वी होकर पंच अग्नियों के बीच में बैठकर तप कर रहे थे। पार्श्व कुमार के मना करने पर भी तापस ने अग्नि में डालने के लिए एक लक्कड़ को काट डाला। इस कर्म से उस लक्कड़ के भीतर रहने वाले सर्प और सर्पिणी के दो–दो टुकड़े हो गए।................ तापस क्रोध से मरकर शम्बर नाम का ज्योतिषी देव हुआ तथा सर्प और सर्पिणी कुमार के उपदेश से शान्ति भाव को प्राप्त हुए और मरकर बहुत भारी लक्ष्मियों के धारण करने वाले धरणेन्द्र और पद्मावती हुए (७३/११६)'

पदमकीर्ति कृत अपभ्रंश भाषा के **पासणाह चरिउ** में लिखा है कि पार्श्व कुमार ने मरते नाग के कान में जाप दिया जिससे वह स्थिर मन से पंचतत्व को प्राप्त हुआ तथा पाताल में नाग राजाओं के बीच तीन पल्य आयु वाले वन्दीश्वर देव के रूप में उत्पन्न हुआ। (संधि–१२)

इस प्रसंग में यह विचारणीय है कि आधुनिक जीव विज्ञान शास्त्र के अनुसार सर्पों में श्रवण तंत्र नहीं होता। यदि ऐसा है तो कुमार के धर्मोपदेश या जाप देने से मरते सांप के शान्त परिणाम होना तर्क युक्त नहीं प्रतीत होता। सुधी पाठकों से निवेदन है कि इस कथा के औचित्य पर प्रकाश डालें।

दीक्षावन– उत्तर पुराण के अनुसार–

"भगवान पार्श्वनाथ का जब तीस वर्ष प्रमाण कुमार काल बीत गया तब उन्होंने (जाति स्मरण आदि के निमित्त से संसार से विरक्त होकर) दीक्षा लेने का संकल्प किया। तब बंधु बांधवों को युक्तियुत वचनों से विदा करं विमला नामक पालकी में सवार होकर वाराणसी के बाहर अश्व वन में पहुंचे। पुष्पदंत ने दीक्षा वन (वाराणसी नगरी के बाहर के उद्यान–वन) का नाम अश्वत्थ वन लिखा है तथा कल्पसूत्र में उसे आश्रम पद उद्यान कहा गया है। उस काल के वाराणसी नगर की सीमाएं वरुणा और असी नामक नदियों से (जो आज भी बड़े नालों के रूप में मौजूद हैं) से परिवेष्ठित थी तथा नगर के बाहर गंगा तट तक घोर वन था। गंगा तट के पास तापसों के आश्रम थे जिसके कारण वन के उस भाग को आश्रमपद या आश्रम वन भी कहा गया है। "वहां पार्श्व कुमार एक बड़ी शिला पर उत्तराभिमुख हो पर्यंकासन से विराजमान हुए तथा पौष कृष्ण एकादशी के दिन प्रातःकाल के समय सिद्ध भगवान को नमस्कार कर उन्होंने तीन सौ अन्य राजाओं (या राजपुत्रों) के साथ दीक्षा रूपी लक्ष्मी स्वीकृत कर ली। (५३/१३०)।

ये तीन सौ कुमार काशी देश के अन्य गणराजा तथा गणराजाओं के पुत्र रहे होंगे। कविवर भूधरदास ने अपने पार्श्व पुराण में लिखा है कि दीक्षा स्थल न तो नगर के अति निकट था और न अधिक दूर (न अति निकट न दीसै दूर) अर्थात् वे वन में कुछ दूर अंदर जाकर ही वट वृक्ष के नीचे शिला पर विराजमान हुए।

पद्यकीर्ति ने दीक्षा वन को कुशस्थल (कन्नौज) नगर का वन लिखा है जहां पार्श्व कुमार राजा रविकीर्ति की युद्ध में सहायता करने गए हुए थे। लेकिन इसकी पुष्टि किसी प्राचीन पौराणिक उल्लेख (**समवायांग**, **कल्पसूत्र**, **पउमचरिउ**, **तिलोयपण्णत्ति**) से नहीं होती। वैसे भी यह संभव नहीं प्रतीत होता कि पार्श्व कुमार ने माता–पिता बन्धु–बांधवों की अनुमति के बिना विदेश में ही दीक्षा ले ली हो।

केवल ज्ञान स्थल–

आचार्य गुणभद्र के अनुसार पार्श्व मुनि प्रथम पारणा के उपरांत अन्यत्र विहार कर गए तथा चार मास उपरान्त पुनः जिस वन में दीक्षा ली थी उसी वन में आकर देवदारू के एक बड़े वृक्ष के नीचे सात दिन का योग लेकर विराजमान हो गए (७३/१३४–१३५)

तभी कमठ के जीव शम्बर देव ने उन पर घोर उपसर्ग किया था जिसके निवारणार्थ धरणेन्द्र पदमावती ने भक्तिवश फणावलि का वज्रमय छत्र ताना था। कविवर भूधरदास भी अपने पार्श्व पुराण में इसी का समर्थन करते हुए लिखते हैं कि प्रभु दीक्षा वन में ही कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ खड़े थे जब कमठ का उपसर्ग हुआ। चूंकि भगवान पार्श्वनाथ के दीक्षा वन में ही केवल ज्ञानोत्पत्ति होने के विषय में पक्की जानकारी उपलब्ध थी इसीलिए कदाचित पुराणकारों ने श्री सम्मेदशिखर से मोक्ष गमन किए भगवान अजितनाथ आदि अन्य १६ तीर्थंकरों के भी केवलज्ञानोत्पत्ति उनके दीक्षा वन में ही घोषित कर दी होगी।

मुनि पद्म कीर्ति ने अपभ्रंश भाषा में रचित अपने **पासणाह चरिउ** में भगवान पार्श्वनाथ के केवलज्ञान वन का नाम भीमाडई लिखा है, पर उस वन की स्थिति के विषय में कोई संकेत नहीं दिया है। इस नाम की पुष्टि या समर्थन अन्य किसी प्राचीन पौराणिक कथ्य से नहीं होती। वैसे भीमाडई (भीमाटवी) का अर्थ बीहड़ घना भयानक वन भी होता है। इस अर्थ में भगवान पार्श्वनाथ के दीक्षा व केवलज्ञान वन को भीमाटवी कहने में कोई विशेष आपत्ति भी प्रतीत नहीं होती।

वर्तमान अहिच्छत्र तीर्थक्षेत्र को ही पद्मकीर्ति द्वारा उल्लिखित भीमाडई मानते हुए पं. बसंत कुमार जैन शास्त्री शिवाड दि. ८ मई २००३ के जैन गजट में

प्रकाशित अपने लेख 'अहिच्छत्र–कोई विचित्र नहीं'' में लिखते हैं– ' कि बनारस नगर उस वक्त विशाल क्षेत्र में फैला हुआ था। इधर पांचाल देश की द्रुपद नगरी के पास के नगर शंखावती से कुछ दूर जो बनारस नगर से न अति निकट और न ही अति दूर के वन में.. दीक्षा के उपरान्त बिहार करते करते आए–– यहां पर संवर देव ने पार्श्वमुनि पर घोर उपसर्ग किया था।''

विद्वान पंडित जी ने अपनी तर्क एवं कल्पना शक्ति से उस काल के काशी देश की वाराणसी नगरी जिसकी सीमाएं असी एवं वरुणा नदियों से परिवेष्ठित थी तथा जिस नगरी के बाहर गंगा तट तक घोर वन था इतना विशाल करार कर दिया कि ५००–६०० किलोमीटर दूर पांचाल देश की शंखावती नगरी का वन उससे न अति निकट और न अति दूर हो गया। तथा इस प्रकार उन्होंने शंखावती नगरी के बाहर का वन भगवान पार्श्वनाथ का दीक्षा वन एवं केवल ज्ञानोत्पत्ति वन सिद्ध हो गया मान लिया।

ऐसे तर्क का कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। भगवान पार्श्वनाथ के काल की तो बात ही क्या, जब देश की व विश्व की जनसंख्या आज की अपेक्षा अत्यल्प थी, १८–१९वीं शताब्दि तक वैभवशाली साम्राज्यों की राजधानी रहे दिल्ली–आगरा जैसे तब के महानगर कहे जाने वाले देश के प्रमुख नगर तीन चार किलोमीटर लम्बी चौड़ी चहारदीवारियों के भीतर ही सीमित थे तथा नगर के अन्दर यातायात के साधन कहारों से ढोई जाने वाली पालकी या घुड़सवारी या गज सवारी मात्र थे। हमारी समझ में न अति निकट न अति दूर लिखने से पुराण कांर का आशय दीक्षा वन में' जो नगरी के बाहर से ही प्रारम्भ हो जाता था, दीक्षा स्थान की स्थिति को सुस्पष्ट करने का है।

अहिच्छत्र सैकड़ों वर्षों से एक प्रमुख दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध चला आ रहा है तथा यहां पर प्रतिष्ठित भगवान पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमा अत्यन्त अतिशयपूर्ण है जिससे लाखों तीर्थभक्तों की आस्था जुड़ी है। तथापि पौराणिक साक्ष्यों के अभाव में यह भगवान पार्श्वनाथ की केवल ज्ञान कल्याणक स्थली सिद्ध नहीं होता। केवल अतिशय से कोई क्षेत्र किसी तीर्थंकर का कल्याणक क्षेत्र नहीं बन जाता, न ही कल्याणक क्षेत्र में कोई अतिशय होना आवश्यक है। यह ऐतिहासिक खोज का विषय है कि इसका नाम अहिच्छत्र क्यों पड़ा। कदाचित् कभी यह नाग जाति के राजाओं की प्रमुख राजनगरी थी जिन्होंने एक समय हस्तिनापुर तक अपनी विजय पताका फैला दी थी जिसके कारण उस नगर के नाम तक में उनका नाम जुड़ गया था (हस्ति– नागपुर)। पार्श्वनाथ–महावीर

काल में नाग जाति श्रमण संस्कृति तथा निर्ग्रन्थ धर्म से प्रभावित थी। वैदिक संस्कृति में इसीलिए उन्हें 'अवैदिक आर्य' या अनार्य भी कहा गया है।

दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र बिजौलिया (जिला भीलवाड़ा–राजस्थान) के लिए भी यह दावा किया जाता है कि वही भगवान पार्श्वनाथ पर हुए घोर उपसर्ग तथा तदनन्तर केवल ज्ञानोत्पत्ति की सही स्थली है। इस दावे के खोखलेपन का विश्लेषण हम पहिले ही शोधादर्श ४६ के पृष्ठ ५६–५८ पर कर चुके हैं। जैसा कि हमने तब भी सुझाव दिया था, वाराणसी की जैन समाज को चाहिए कि वह गंगा तट से कुछ पहिले किसी उपयुक्त स्थान पर भगवान पार्श्वनाथ के केवलज्ञान कल्याणक तीर्थ की संस्थापना करे।

मोक्ष कल्याणक स्थल–

श्री सम्मेदशिखर के सर्वोच्च शिखर सुवर्णभद्र कूट से भगवान पार्श्वनाथ का मोक्ष गमन जैन धर्म की सभी आम्नायों द्वारा समान रूप से मान्य है। इस पर्वतराज को पारसनाथ पहाड़ भी इसी कारण कहा जाता है। हमारी तो यह भी धारणा है कि भगवान पार्श्वनाथ के इस पर्वतराज पर अन्तिम तपस्या करने तथा मोक्ष गमन करने के कारण ही इसे शाश्वत तीर्थराज की संज्ञा दी गई, जो जैन धर्म पर भगवान पार्श्वनाथ के अत्यधिक प्रभाव का द्योतक है तथा अजितनाथादि अन्य १६ तीर्थंकर जिनके विषय में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं रह गई थी, उनका निर्वाण भी इसी पर्वत से हुआ मान इसे शाश्वत निर्वाण क्षेत्र घोषित कर दिया गया होगा। अन्यथा इस पर्वत से मोक्ष गए द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ के नाम से भी कभी इसका नाम अजितनाथ पर्वत रहा होता, जो कदाचित् यह कभी नहीं कहलाया।

यह भी उल्लेखनीय है कि भगवान पार्श्वनाथ ने इस पर्वतराज पर निर्वाण पूर्व एक मास तक ध्यान–तपस्या की थी। अतः अन्य १६ तीर्थंकरों के विषय में भी पुराणकारों ने यह घोषित कर दियाकि उन्होंने भी पर्वतराज पर निर्वाण पूर्व एक मास की तपस्या की थी।

भगवान पार्श्वनाथ फणावलि–छत्र का अंकन–

केवलज्ञानोत्पत्ति के उपरान्त अर्हन्त भगवान पर किसी भी प्रकार का उपसर्ग नहीं रह जाता तथा जैन मंदिरों में उपासना के लिये तीर्थंकरों की अर्हन्त अवस्था की ही मूर्तियां प्रतिष्ठापित की जाती हैं। भगवान पार्श्वनाथ पर मुनि अवस्था में ही हुये घोर उपसर्ग के निवारणार्थ धरणेन्द्र ने भक्ति वश उन पर फणावलिका वज्रमय छत्र ताना था किन्तु उपसर्ग का पूर्ण शमन तो उनके केवलज्ञानोत्पत्ति के

साथ या उसके पूर्व ही हो गया था, फिर भी प्राचीनकाल से ही भगवान पार्श्वनाथ की अधिकांश मूर्तियाँ फणावलि–छत्र–अंकन युक्त ही निर्मित होती चली आ रहीं हैं, यद्यपि अपवाद स्वरूप उनकी कुछ मूर्तियां फणावलि–छत्र विहीन भी देखने में आई हैं। सातवें तीर्थंकर भगवान सुपार्श्वनाथ की मूर्तियां भी फणावलि छत्रांकन युत ही मिलती हैं, यद्यपि न तो वे नागवंशी थे (उनका वंश इक्ष्वाकु बताया गया है) और न ही कोई नाग उनके किसी जीवन प्रसंग से जुड़ा है। सुधी स्वाध्यायी पाठकों से निवेदन है कि वे भगवान सुपार्श्वनाथ व भगवान पार्श्वनाथ की मूर्तियों पर फणावलि के अंकन के औचित्य पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

भगवान पार्श्वनाथ का संघ परिवार–

उत्तर पुराण के अनुसार भगवान पार्श्वनाथ के संघ परिवार में स्वयंभू आदि दस गणधरों सहित १६००० मुनिराज थे जो सभी शीघ्र मोक्षगामी थे। इससे कदाचित् यह ध्वनि निकलती है कि भगवान तथा उनके गणधरों द्वारा दीक्षित सभी मुनिराजों ने अपनी उत्कृष्ट तपस्या के बल से उसी भव से निर्वाण प्राप्त किया। भगवान के संघ परिवार में सुलोचना आदि १६००० आर्यिकाएं थी, एक लाख श्रावक तथा तीन लाख श्राविकाएं थी। श्राविकाओं की तीन गुनी संख्या श्रावकों के कदाचित् एक से अधिक पत्नी तथा परिवार में एकाध विधवा के होने का द्योतक है। हमारी समझ में श्रावक/श्राविकाओं की यह अल्प संख्या केवल भगवान द्वारा उपदिष्ट श्रावकाचार का पालन करने वाले व्रती–संयमी श्रावक–श्राविकाओं की ही होगी तथा भगवान में व उनके उपदिष्ट धर्म में श्रद्धा रखने वाले ग्रहस्थों की संख्या इससे कहीं अधिक होगी। यह दृष्टव्य है कि तीर्थंकर मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ व नेमिनाथ के संघ परिवार में भी पुराणकारों ने श्रावक–श्राविकाओं की सख्या इतनी ही बताई है।

भ० पार्श्वनाथ द्वारा उपदिष्ट धर्म का स्वरूप–

उत्तराध्ययन सूत्र के २३वें अध्ययन में भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के आचार्य केशी मुनि गणधर गौतम स्वामी से धर्म चर्चा करते हुये कहते हैं–

'हे महामुने, चातुर्याम धर्म का उपदेश पार्श्व ने किया और पंच शिक्षा धर्म का उपदेश वर्द्धमान ने किया–––।

उपरोक्त संवाद से यह समझा जाता रहा है कि भगवान पार्श्वनाथ ने चार व्रतों–अहिंसा, सत्य, अचौर्य तथा अपरिग्रह–का ही उपदेश दिया था तथा पांचवे व्रत ब्रह्मचर्य का अलग से निरूपण न करके उसे अपरिग्रह व्रत में ही समाहित मान लिया गया था। किन्तु आगम साहित्य के गहन अध्येता सुप्रसिद्ध विद्वान स्व.

डा. एम. डी. वसन्तराज ने सितम्बर १६६६ में श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान वाराणसी में दी गई अपनी व्याख्यान माला ''गुरु परंपरा से प्राप्त दिगम्बर जैन आगम–एक इतिहास'' (जो बाद में पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हुई है) में ठोस तर्कों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि चातुर्याम धर्म से तात्पर्य सम्यक्दर्शन ज्ञान–संयम–तप वाले चार यमों का धर्म है जिसका भगवान पार्श्वनाथ ने उपदेश दिया था।

निर्ग्रन्थ धर्म–निग्गण्ठ णाय–

भगवान महावीर के पूर्ववर्ती तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट धर्म निर्ग्रन्थ धर्म के नाम से जाना जाता था तथा समझा जाता है कि भगवान महावीर के माता पिता तथा अनेक लिच्छवि क्षत्रिय इस धर्म के मानने वाले थे, भगवान बुद्ध के भी कई कुटुम्बी जन पार्श्व पत्यिक (अर्थात् भगवान पार्श्वनाथ द्वारा उपदिष्ट धर्म के श्रावक) थे भगवान महावीर भगवान पार्श्वनाथ का स्मरण बड़े पूज्य भाव से 'पुरुषादानीय' (पुरुषोत्तम) 'णाय' (नाथ) के संबोधनों से करते हैं।

प्राचीन बौद्ध साहित्य (**दीर्घ निकाय, मज्झिम निकाय**) में कई स्थलों पर भगवान महावीर का उल्लेख 'निग्गण्ठ णाय पुत्त'' के नाम से किया गया है। कुछ विद्वानों ने इसका संस्कृतकरण 'निर्ग्रन्थ ज्ञातृ पुत्र' करके उनके वंश का नाम ही ज्ञातृवंश मान लिया है, तथा कल्पना की उड़ान में आज की जथरिया आदिवासी जाति को ज्ञातृ वंशी लिच्छवियों का वंशज करार कर दिया। बौद्ध साहित्य में भगवान महावीर का निग्गण्ठ णाय पुत्त के नाम से उल्लेख एक तत्कालीन प्रमुख धर्म नेता के रूप में किया गया है। यदि णाय पुत्त का अर्थ भगवान महावीर के णाय (नाथ या ज्ञातृ) वंशी होने से होता, तो इससे अधिक उपहास्पद और क्या बात हो सकती है कि जाति पांति के प्रबल विरोधी तथा समस्त मनुष्य समुदायों को एक ही जाति का मानने वाले भगवान महावीर केवल– ज्ञानोत्पत्ति के उपरांत भी निर्वाण पर्यन्त अपने वंश का तमगा अपने नाम के साथ लगाए रहे हो, जबकि आज भी उनकी परम्परा में दीक्षित जैन मुनि अपने दीक्षा पूर्व परिवार कुल जाति आदि से पूर्ण नाता तोड़कर दीक्षोपरांत अपना नया जन्म हुआ मानते हैं तथा अपना नाम तक नया रख लेते हैं। हमारा मानना है कि महावीर भगवान पार्श्वनाथ को अपना नाथ (उपास्य) मानते थे तथा धर्म प्रचार के क्षेत्र में अपने को उनका पुत्रवत् मानते थे। जिससे उन्होंने अपने को निग्गण्ठ पाय पुत्त कहलाना ही पसंद किया होगा न कि निग्गण्ठ णाय। भगवान महावीर ने ऋषभदेव से लेकर पार्श्वनाथ तक अपने पूर्ववर्ती सभी प्रमुख नाथसिद्धों को एक लड़ी में पिरोकर अपने द्वारा उपदिष्ट

धर्म के पुरोधा, तीर्थंकर घोषित किया था तथा अपने धर्म को मूल रूप में उन पूर्व वर्ती तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट धर्म ही बताया था। इस कारण भी उन्हें निगण्ठ णाय पुत्त कहा गया होगा। श्रुतांगों में छठा अंग 'णाया धम्म कहा' है जिसमें निर्ग्रन्थ धर्म के कुछ विशिष्ट उपासकों की साधना का वर्णन धर्म के व्यवहारिक पक्ष का निरूपण करने के लिये किया गया है। इससे भी सिद्ध होता है कि णायं से तात्पर्य लिच्छवियों के किसी वंश विशेष से नहीं था, वरन् सिद्धों–तीर्थंकरों से था।

प्राचीन जैन व बौद्ध वांड्मय के अनन्य अध्येता आचार्य श्री नगराज डी.लिट्. (नव तेरापंथ) के अनुसार निग्गण्ठ शब्द जैन श्रमणों के लिए तथा णाय पुत्त भगवान महावीर के लिए बौद्ध साहित्य में ही नहीं जैन आगमों (श्वे.) में भी कई स्थलों पर प्रयुक्त हुआ मिलता है।

हमारा मानना है कि भ. महावीर ने अपने पूर्ववर्ती सभी प्रमुख २३ नाथ–सिद्धों को एक लड़ी में पिरोकर अपने द्वारा उपदिष्ट धर्म के पूर्व पुरोधा–तीर्थंकर घोषित किया था तथा अपने को इन निर्ग्रन्थ नाथों के समकक्ष न रंखते हुए धर्म प्रचार के क्षेत्र में अपने को उनका धर्म पुत्र ही माना था तथा कहलाना पसंद किया था। यह तो कदाचित् उनके निर्वाण महोत्सव मनाते समय महापंडित इन्द्रभूति गौतम गणधरादि उनके प्रमुख दूरदर्शी शिष्यों ने उनके अलौकिक एवं अनुपम तेजोमय व्यकितत्व एवं कृतित्व को अमर करने के लिये उन्हें २४वें तथा अन्तिम तीर्थंकर वीरनाथ घोषित कर नाथ–सिद्धों की लड़ी पूरी कर भविष्य के लिए उस पर पूर्ण विराम् लगाया होगा।

परवर्ती मध्य युग में नाथ–सिद्धों की परम्परा की एक अन्य शाखा के रूप में हमें गुरु मत्स्येन्द्रनाथ, गुरु गोरखनाथ आदि हठयोगियों के दर्शन होते हैं जो अपने को भगवान या भगवान के अवतार के बजाय गुरु कहलाना ही पसंद करते थे। जैन श्रमणाचार में कायक्लेश तप का समावेश कदाचित् किसी ऐसी ही सिद्ध योगियों की प्राचीन परम्परा के जैन धर्म पर प्रभाव का द्योतक प्रतीत होता है। इन सिद्ध योगियों में आदि नाथी, धर्मनाथी, नेमिनाथी व पारसनाथी शाखाओं के नाम भी मिलते हैं। जैन धर्म में भी गुरु का सर्वाधिक महत्व है। तीर्थंकर देव तो परम गुरु कहलाते ही हैं। अनादि निधन माने जाने वाले णमोकार मंत्र में केवल गुरुओं की ही तो वंदना है।

परवर्ती जैन साहित्य में 'पार्श्वपत्यिक या पार्श्वस्थ' श्रमणों की शिथिलाचारी व श्रमणाभासी के रूप में निन्दा की गई है। हमारी समझ में इससे तात्पर्य सिद्ध योगियों की इस पारसनाथी शाखा के योगियों से रहा होगा न कि भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के महावीरकालीन आचार्य केशी (व उनके शिष्यों से) क्योंकि आचार्य केशी ने तो स्वयं गणधर गौतम स्वामी से अपनी शंकाओं का

समाधान कर निग्गण्ठ णाय पुत्त महावीर स्वामी को निर्ग्रन्थ धर्म को तत्कालीन परिवेश में प्रस्तुत करने वाले पुरोधा के रूप में स्वीकार कर लिया था तथा उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था। आचार्य केशी के शिष्यों की परम्परा श्वेताम्बर आम्नाय में १६ वीं सदी के अंत तक चलती रही तथा तदुपरान्त इसका विलय अन्य गच्छों में हो गया।

अनाथनाथ निर्ग्रन्थ नाथ पारसनाथ को शत शत वंदन करते हुए हम इस लेख का समापन करते हैं।

ऊं ह्रीं श्रीं क्लूं क्लूं एं अर्हं श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय सर्व विघ्न विनाशाय सर्व मंगल मांगल्यम् नमो नमः।

— अजित प्रसाद जैन

आभार

❑ समिति के अध्यक्ष **श्री लूणकरण नाहर जैन**, राजेन्द्र नगर, लखनऊ ने समिति के शोध पुस्तकालय के संवर्द्धन हेतु रु. ३१००/— तथा **राजेन्द्र अभिधान कोश** का पूरा सेट क्रय करने हेतु रु. २,१००— की विशेष सहायता प्रदान की।

❑ **श्री कमल सिंह रामपुरिया**, रामपुरिया मेन्शन्स, १७/३ कनोडिया रोड, हावड़ा ने **शोधादर्श** हेतु रु. ५०१/— भेंट किये।

❑ **श्री निहालचंद्र जैन**, श्री सदन, अग्रसेन नगर, अजमेर ने **शोधादर्श** हेतु रु. ३००/— भेंट किये।

❑ **डॉ. शशिकांत—रमाकांत जैन**, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ ने अपने पूज्य पिताजी इतिहास—मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की १५वीं पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति में शोधादर्श हेतु रु. ५१/— भेंट किये।

❑ **श्री ताराचंद्र जैन अग्रवाल**, पचेवर (टोंक) राजस्थान ने अपने पूज्य पिताजी श्री पांचूलाल जी तथा माताजी श्रीमती कपूरीदेवी की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** हेतु रु. ५०/— भेंट किये।

❑ **श्री अजित प्रसाद जैन** (प्रधान सम्पादक) ने अपने कनिष्ठ पुत्र प्रिय मणिकान्त की २१ जुलाई को तीसरी पुण्य तिथि पर उसकी स्मृति में रु. ५१/— **शोधादर्श** हेतु भेंट किए।

वैशाली : महावीर–युग में

– विद्यावाचस्पति डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव

आगम–परवर्ती जैन ग्रन्थकार महावीर–युग की वैशाली का नामोल्लेखपूर्वक वर्णन करने में प्रायः उदासीन हैं। यही कारण है कि महावीर–चरित के ग्रन्थों में वैशाली का नामसंकेत बहुत ही कम हुआ है। वैशाली की जगह, वहाँ अवस्थित महावीर की जन्मस्थली कुण्डपुर (कुण्डलपुर या क्षत्रियकुण्ड ग्राम) का या फिर विदेह देश का चित्रण उपलब्ध होता है। इसके विपरीत, बौद्ध ग्रन्थों में नामकीर्तनपूर्वक वैशाली की बहुत ही मनोरम सांस्कृतिक और ऐतिहासिक, साथ ही राजनयिक झांकी प्रस्तुत की गई है जिसमें बुद्ध और अम्बपाली की हृदयावर्जक कथा, प्रवृत्ति और निवृत्ति, राग और विराग के अन्तर्द्वन्द्व की नन्दतिक भावना से ततोऽधिक ऊर्जस्वल होकर उभरी है। वैशाली महावीर और बुद्ध दोनों महापुरुषों की समयुगीन संस्कृति को युगपत् अभिव्यंजना करनेवाली ऐतिहासिक नगरी के रूप में लब्धप्रतिष्ठ है।

महावीर–युग :

वैशाली महावीर के युग में लिच्छवियों की राजधानी थी। साथ ही भारत के तत्कालीन सोलह महाजनपदों में, शक्तिशाली गणतन्त्रात्मक वज्जिसंघ के शासन केन्द्र के रूप में उसकी अनन्यता थी। ईसा पूर्व पंचम–षष्ठ शती के जैनागमों में वैशाली से सम्बद्ध अनेक ऐसे ऐतिहासिक सूत्र मिलते हैं, जिनसे वैशाली की विशालता संकेतित होती है। हिंसावादी एकान्तियों के लिए अहिंसावादी 'अनेकान्त' की जयपताका फहराने वाले, पराचेतना से संचालित वैशाली–विभूति महावीर को **'सूत्रकृतांग'** में 'वेसालिय' कहा गया है : "एवं से उदाहु अनुत्तरमुणी अनुत्तरदंसी अनुत्तरणाणदंसनधरे अरहा णायपुत्ते भगवं वेसालिए विआहिए त्ति बेमि।" इस प्रकार, वैशाली–पुत्र महावीर स्वामी के लिए 'वैसालिय' (वैशालीक) विशेषण **'उत्तराध्ययन'** आदि विभिन्न जैनागमों में भी भूयशः आवृत्त हुआ है।

जैन कल्पसूत्र के अनुसार, वैशाली विदेह की राजधानी थी, जिससे महावीर स्वामी का घनिष्ठ सम्बन्ध था। इस ग्रन्थ के अनुसार, महावीर विदेहवासी थे और उनकी माता का नाम विदेहदत्ता था। उन्होंने अपने बहुमूल्य जीवन के तीस वर्ष वैशाली में व्यतीत किये थे। पन्द्रहवीं शती के जैन आचार्य भट्टारक सकलकीर्ति ने संस्कृत में निबद्ध **'वीरवर्द्धमानचरित'** के सप्तम अधिकार के प्रारंभ में महावीर–युग

के विदेह और वहां के कुण्डपुर, लोकप्रचलित (कुण्डलपुर) नगर का विपुल सांस्कृतिक चित्र उपन्यस्त किया है। तदनुसार, तत्कालीन विदेह भारतवर्ष के विशाल प्रदेशों में परिगणित था, जिसकी महिमा अविमुक्त क्षेत्र काशी के समानान्तर थी। उक्त प्रदेश का 'विदेह' नाम इसलिए भी था कि वहां के निवासी श्रमण मुनि अपने शुद्ध चारित्र से देहरहित (मुक्त) हो जाते थे।

विदेहभूमि की अपनी विशेषता थी कि वहां के निवासियों में अनेक मनुष्य अपने सदाचार और विशुद्ध भावनाओं से तीर्थंकर नाम–कर्म को अर्जित करने की क्षमता आयत्त करते थे और अनेक मनुष्य पंचोत्तर विमानों में अहमिन्द्रत्व प्राप्त करने की शक्ति से सम्पन्न होते थे। कतिपय भव्य जीव सत्पात्रों के लिए उत्तमभक्ति के साथ दान करके भोगभूमि अर्जित करते थे और कुछ लोग जिन–पूजन के प्रभाव से इन्द्रत्व को प्राप्त कर लेते थे। उस विदेह–क्षेत्र में देव, मनुष्य और विद्याधरों से वन्दनीय तीर्थंकरों और सामान्य केवलियों की निर्वाणभूमियां पदे–पदे दृष्टिगोचर होती थीं। वहाँ के वन, पर्वत आदि ध्यानावस्थित योगियों द्वारा निरन्तर आसेवित थे और नगर, ग्राम आदि ऊंचे–ऊंचे जिन–मंदिरों से सुशोभित रहते थे। केवलज्ञानी भगवान और गणधर धर्मप्रवृत्ति के निमित्त चारों संघों के साथ वहां तपोविहार किया करते थे।

इस प्रकार के धार्मिक तथा औत्सविक वातावरण से समलंकृत उस विदेहभूमि, अर्थात् वैशाली के नाभितुल्य मध्यभाग में, अयोध्यानगरी के समान, कुण्डपुर नाम का महानगर विराजित था। सुरक्षा की दृष्टि से वह महानगर ऊंचे–ऊंचे गोपुरों, परकोटों और गहरी खाइयों से घिरा था, फलतः वह शत्रुओं के लिए दुर्लंघ्य था। वहाँ उस्वर्ग के देवता तीर्थयात्रा करने तथा केवली और तीर्थंकरों के पंचकल्याणक महोत्सव मनाने के निमित्त बराबर आया करते थे। इस प्रकार, वह भूमि अनवरत समारोह की सघन सुषमा से नित्य नवीन और परम रमणीय बनी रहती थी।

उस विशाल नगर में सोने और रत्नों से निर्मित उत्तम जिनालय अपनी पवित्र आभा बिखेरते थे। ज्ञानियों से सुसेवित वह महानगर अद्भुत धर्म–समुद्र की भांति प्रतीत होता था। उन जिनालयों में बराबर जयजयकार गूंजता रहता था और स्तोत्र, गीत, नृत्य, वाद्य आदि की मनमोहक स्वरमाधुरी अनुध्वनित होती रहती थी। जिनालयों की दिव्य मणिमय जिनप्रतिमाएं दिव्य सुवर्ण के उपकरणों और अलंकरणों से दीप्त रहती थीं। पूजन के लिए आनेवाले दम्पति अपने उत्कृष्ट गुणों और दिव्य रूपों से देवयुगल के समान सुशोभित होते थे।

उस कुण्डपुर में बुद्धिमान तथा भक्तिभावपूर्वक किमिच्छित दान करनेवाले पुरुष नित्य अपने घर के द्वार पर अतिथियों की प्रतीक्षा करते रहते थे। मुनियों

को पारणा करानेवाले गृहस्थों के घर में निरन्तर रत्नवृष्टि होती रहती थी, जिसे देखकर दूसरे लोगों को भी दान करने की प्रेरणा मिलती रहती थी। वहाँ ऊंचे–ऊंचे गगनचुम्बी प्रासाद अपने ध्वजा–रूपी हाथों से देवेन्द्रों का आवाहन करते से प्रतीत होते थे। वहाँ के भवनों में रहने वाले लोग दाता, धार्मिक, शूरवीर तथा व्रतशील गुणों के धारक होते थे। वे देव, गुरुओं की भक्ति, सेवा और पूजा में लगे रहते थे। वहां के निवासी नीतिमार्ग में चतुर, लोक–परलोक के हितसाधन में उद्यत, धर्मात्मा, सदाचारी, धनी सुखी और ज्ञानी थे। वहाँ के दिव्य रूप–गुणवाले पुरुष और उनके समान ही दिव्य रूप–गुणवती स्त्रियां देव–देवियां के समान प्रतीत होते थे। इस प्रकार, वह कुण्डपुर तत्कालीन भारतीय सांस्कृतिक चेतना की परमोन्नत स्थिति का परिचायक था।

गुणनंद्रगणी–विरचित प्राकृत में निबद्ध **'महावीरचरित्र'** के सातवें प्रस्ताव में वैशाली का नामोल्लेखपूर्वक वर्णन मिलता है। महावीरस्वामी तपोविहार के क्रम में जिस समय वैशाली नगरी लौटे थे, उस समय वहाँ शंख नाम का गणराजा राज्य करता था– **"सो महावीर रजिणवरो कमेण विहरमाणो वेसालिं नयरिं संपत्तो, तत्थ य....संखोनाम गणराया"**। शंख ने महावीरस्वामी का बड़े ठाट–बाट से स्वागत–सत्कार किया थ। महावीरस्वामी वहां से पुनः वैशाली के पार्श्ववर्ती वाणिज्य–ग्राम नगर में भी पधारे थे और उसके बहिर्भाग में जहाँ उन्होंने तपोंविहार किया था वह स्थान वनखण्ड से मण्डित था जिसमें छहों ऋतुएं क्रमशः अपना सौन्दर्य बिखेरती थीं। महावीर स्वामी जब उस नगर के अन्तर्भाग में पहुँचे तब आनन्द नामक तपनिरत श्रावक ने उनके दर्शन से केवलज्ञान प्राप्त किया था। इस प्रकार **महावीर चरित्र** में महावीरयुगीन वैशाली के प्राकृतिक सौन्दर्य और धार्मिक जनजीवन का सुरम्य चित्र प्रतिबिम्बित हुआ है।

कविवर विबुध श्रीधर (बारहवीं शती) द्वारा अपभ्रंश में निबद्ध **वड्ढमाण चरिउ** से भी महावीर–युग की वैशाली के उदात्त रूप के दर्शन होते हैं। विदेह देश की तत्कालीन वैशाली के उपकण्ठ में अवस्थित कुण्डपुर नगर का कलावरेण्य चित्रण करते हुए अपभ्रंश–कवि विबुध श्रीधर ने लिखा है–

णिवसइ विदेहु णामेण देसु। खयरामरेहिं सुहयर–पएसु।।
सुपसिद्धउ धम्मिय लोय–चारु। णिय–सयल–मणोहर कंति–सारु।।
पुंजीकिउ णाइँ धरित्तियाए। मुणिवर–वय–'पंकय– भत्तियाए।।
सिय–गोमंडल–जणियाणुराय। सुणिसण्ण मयंकिय मज्झ–भाय।
जहिं जण मणरा विणि अडइ भाइ। सामन्न निसायर–मुत्ति णाइँ।।

निश्चय ही, उपर्युक्त वर्णन से कुण्डपुर के आश्रमोपम बिम्ब का भव्यतम उद्भावन होता है। उक्त ग्रन्थकार द्वारा किये गये आगे के वर्णनों से कुण्डपुर के प्राकृतिक वैभव और स्थापत्य की उत्कृष्टता का निदर्शन प्राप्त होता है: वह कुण्डपुर पद्मपूरित जलाशयों से सुशोभित था। वहां की कृषि–सम्पदा स्पृहणीय थी। मणिरत्नखचित, ध्वजमण्डित गगनस्पर्शी विमानों–प्रासादों, गम्भीर खाइयों और उन्नत परकोटों से विभूषित कुण्डपुर अतिशय विशाल प्रतीत होता था। वहाँ की कामिनियों के आभूषणों की छटा रात्रि में दीपकों की ज्योति को निष्प्रभ कर देती थी और उनके लावण्य–ललित मुखचन्द्र की कान्ति से चन्द्रमा भी मलिन पड़ जाता था। इस प्रकार, प्रस्तुत **–वड्ढमाणचरिउ'** से भी स्पष्ट है कि महावीर के समय की वैशाली भारतवर्ष की तत्कालीन समृद्धतम महानगरियों में अद्वितीय थी।

कहना न होगा कि उक्त प्रकार के और भी अनेक धार्मिक एवं पौराणिक जैन ग्रन्थों में महावीर–युग की वैशाली की वैभव–दीप्ति के संबंध में महत्वपूर्ण विवरण मिलते हैं। तदनुसार, वैशाली–स्थित कुण्डपुर नगर की चर्चा इन्द्रलोक में भी होती थी। वैशाली की भूमि उपवन, कानन, कुंजवन, नदी, सरोवर आदि की प्राकृतिक दिव्यता, भवन, प्राकार, प्राचीर, परिखा, ध्वज, तोरण आदि की वास्तुगत भव्यता तथा धन–धान्य, पशु धन आदि की अपारता के साथ ही बहत्तर कलाओं में निपुण रूपवान नागरिकों की धर्म प्रभावना की प्रकर्षता आदि की दृष्टि से देवलोक की समता रखती थी, इसलिए वह तीर्थंकर महावीर की जन्मभूमि के उपयुक्त थी।

जिनप्रभूसरि–रचित **'विविधतीर्थकल्प'** के 'शत्रुंजय तीर्थकल्प' में कुण्डग्राम या कुण्डपुर की तीर्थोपमता को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि वहां की यात्रा करने से सौ गुना फल प्राप्त होता है।

इससे स्पष्ट है कि जैनों की दृष्टि में वैशाली का एक महिमाशाली तीर्थ के रूप में अधिक मूल्य था। किन्तु, बौद्ध वाङ्मय में वैशाली का राजनीतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी मूल्यांकन किया गया है और इस सम्बंध में पालि साहित्य में विस्तृत विवरण भी उपलब्ध होता है।

प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में इस बात की बार–बार चर्चा आई है कि वैशाली के महावीर–युग के वज्जिसंघ के लिच्छवि– सदस्य इतने अनुशासित, निर्भय और पराक्रमी थे कि वे अपने शत्रुओं को तुच्छ समझते थे। वे नियमित रूप से महासभा में सम्मिलित होते, विचार–विमर्श करते तथा संघ–नियमों का दृढ़ता से पालन करते थे। वज्जिसंघ के सदस्यों की यह एकसूत्रता मगध–साम्राज्य के लिये ईर्ष्या का कारण थी, यह बात बुद्ध और उनके प्रधान शिष्य आनन्द के सुप्रसिद्ध पारस्परिक संलाप के माध्यम से भी स्पष्ट होती है।

ऐतिहासिक स्रोत से यह सूचना मिलती है कि महावीर युग की वैशाली के लिच्छवि उत्तर–पूर्व भारत की महाबलशाली, सुशिक्षित, सम्पन्न और कलाप्रेमी क्षत्रिय जाति के थे। तभी तो उन्होंने विदेह देश की ग्रामसुन्दरियों की कला–प्रतियोगिता के माध्यम से अम्बपाली को निर्वाचित कर उसे वैशाली की नगरवधू या राजनर्तकी के पद पर प्रतिष्ठित किया था। और जब, मगध की सेना वैशाली पर चढ़ आई थी, तब युद्धोन्माद में आकर रणभूमि में सिंहनाद करने वाले सैनिकों में अम्बपाली ने ही सबसे आगे बढ़कर वज्जियों को शत्रु–संहार के लिए ललकारा था। इससे यह संकेत मिलता है कि महावीर–युग की वैशाली की नारियां केवल कलाविलासिनी ही नहीं थी, अपितु वे तपस्साधना के लिए भोग–विलास को पटान्त–लग्न तृण की तरह तुच्छ समझकर तिलांजलि दे देती थीं। इस संदर्भ में चम्पा से वैशाली में आकर अपने विशाल भिक्षुणी–संघ के साथ धर्मविहार करने वाली, महावीर की शिष्या चंदनबाला तथा वैशाली–गणराज्य की अंतिम अधिष्ठात्री कुमारदेवी के नाम अनुशंसनीय हैं। भगवान महावीर की माता विदेह (वैशाली) की थीं और महावीर को 'वैदेही–पुत्र' (वैशालिक) के रूप में सम्बोधित किया जाता था। इससे यह सहज ही अनुमेय है कि महावीर के समय विदेह लिच्छवि शासन के अन्तर्मुक्त था। इसीलिए आत्मप्रकाश भगवान महावीर के निर्वाण की वेला में नवमल्लियों के साथ ही विदेह के लिच्छवियों ने भी दीपोत्सव का आयोजन किया था।

प्राचीन इतिहास के अतिरिक्त पुरातन जैन साहित्य से भी इस बात का पता चलता है कि ईसा पूर्व पांचवी–छठीं शती, अर्थात् महावीर के समय में वैशाली में लिच्छवियों का राज्य था और वैशाली की सर्वतोमुखी समृद्धि परवान चढ़ी हुई थी। इतना ही नहीं, महावीर के समय, वैशाली में लिच्छवियों ने ही संसार की अतिसभ्य शासन–व्यवस्था गणतंत्र की स्थापना की थी, जिसमें वंश–परम्परा से कोई राजा नहीं होता था, वरन् जनता द्वारा चुना गया प्रतिनिधि ही राजा माना जाता था। अतएव, आज भी महावीर–युग की वैशाली के लिच्छवियों को ही गणतंत्रात्मक राज्यशासन का प्रथम प्रतिष्ठाता के रूप में स्मरण किया जाता है।

– पी. एन सिन्हा कालोनी
भिखनापहाड़ी, पटना –८००००६

एक जब्तशुदा लेखः ऐतिहासिक दस्तावेज

भगवान महावीर और महात्मा गांधी

– (स्व.) बा. ज्योतिप्रसाद जैन देवबन्दी

(यह लेख देवबन्द से प्रकाशित उर्दू पत्रिका 'जैन प्रदीप' के अप्रैल–जून १९३० के अंक में उर्दू में छपा था। इसके कई अंशों पर तत्कालीन बृटिश सरकार को कड़ी आपत्ति थी। अतः इस पत्रिका पर पाबन्दी लगा दी गई थी और आगे पत्रिका निकालने के लिये एक हजार रुपये की जमानत मांगी गई थी जिसे देने से पत्रिका के स्वाभिमानी सम्पादक–प्रकाशक व उक्त लेख के लेखक बा. ज्योति प्रसाद ने मना कर दिया था। अतः पत्रिका बन्द हो गई थी। उस लेख का हिन्दी (देवनागरी) रूपान्तरण डॉ. कपूरचंद जैन एवं डॉ. ज्योति जैन ने किया है जो 'जैन प्रचारक' (नई दिल्ली) पत्रिका के मई २००३ के अंक में पृष्ठ ८–१२ पर प्रकाशित हुआ है।

चूंकि उस लेख में भगवान महावीर और महात्मा गांधी से सम्बंधित विचार ही नहीं, अपितु सन् १९३० के आसपास भारत की आम जनता की करुण कहानी भी कही गई है। उस ऐतिहासिक दस्तावेज के सम्पादित अंश यहां साभार प्रस्तुत हैं। – रमा कान्त जैन)

२५०० साल पहले की तारीख से पता चलता है कि भारतवर्ष में अंधेरगर्दी थी। जुल्म व सितम का बाजार गर्म था। यह वह ज़माना था कि देवी देवताओं के नाम पर खून की नदियां बहाई जाती थीं। देव मंदिर तक तलघरों का काम देते थे। इनकी दीवारें बेजुवान जानवरों के खून से रंगी हुई दिखलाई देती थीं। घोर हिंसा फैली हुई थी और ऐसे पाप, अत्याचार धर्म के नाम पर, देवी–देवताओं के नाम पर किये जाते थे। तमाम जीव दुखी थे। कोई रक्षक नज़र नहीं आता था।

इस नाजुक ज़माने में महावीर भगवान का जन्म हुआ। भगवान ने कहा कि घबराओ नहीं तुम्हारा उद्धार मैं करूंगा। तुम सब बराबर हो, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र सब इंसान हैं, सबकी आत्माएं पवित्र हो सकती हैं। सब इंसान एक बराबर हैं, सबका उद्धार शुद्ध आचरण से ही हो सकता है। क्या बादशाह! क्या रियाया ! क्या अमीर ! क्या गरीब ! क्या विद्वान! क्या मूर्ख! सब ही इंसान हैं और

इन्सानी हैसियत से सबका दर्जा एक है। धर्म ही सच्चाई है। झूठ, फरेब, हिंसा, चोरी, जिनाकारी वगैरह पापों का तर्क करके धर्म का पालन करो।...

भगवान ने कहा कि इंसान मुकम्मिल नहीं है। इसमें बहुत सी कमियां हैं, इसलिये अगर मुझे इस जुल्मोसितम को दुनिया के तख्ते से उठा देना है तो पहिले मुझे आदर्श बनना चाहिए, मुकम्मिल बनना चाहिये, तभी काम होगा। इसलिये बारह साल सख्त रियाजत की और बहुत सी तकलीफों का सामना भी किया और आखिर मुकम्मिल होकर ही छोड़ा। आपने साबित कर दिया कि तशद्दुद को अदम तशद्दुद ही जीत सकता है।

आपने सन्यास लेते वक्त पांच महाव्रत लिये थे। १. अहिंसा, २. सच बोलना, ३. चोरी नहीं करना, ४. ब्रह्मचर्य का पालन, ५. अपरिग्रही रहना, यानि दुनिया की चीजों में मोह न रखना या यूं कहो कि अपने पास जरूरत से ज्यादा सामान न रखना।

भगवान महावीर ने केवलज्ञान हासिल करके उपदेश दिये और कहा कि हर एक प्राणी धर्म का पालन कर सकता है, क्या बाह्मण ! क्या शूद्र! क्या वैश्य! क्या गरीब! क्या राजा! क्या मर्द! क्या औरत! सिर्फ इंसान ही क्यों बल्कि पशु–पक्षी भी धर्म का पालन कर सकते हैं। धर्म बेजुबान जानवरों और इन्सानों को कत्ल करके यज्ञ करने में नहीं है, बल्कि धर्म तो अहिंसा परम धर्म है। धर्म का स्वरूप "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" है। यानि जो अपनी आत्मा अपने ज़मीर के खिलाफ हो वह दूसरे के लिए हरगिज न करो। जैसे अगर तुम्हें कोई मारता है तो तुम किना दुःख महसूस करते हो, इस तरह हमारा धर्म है कि हम बेजुबान जानवरों को कत्ल करने में धर्म न मानें, अगर कोई हमारे सामने झूठ बोलता है तो हम झुंझला उठते हैं, तो हमारा फर्ज है कि हम कभी झूठ न बोलें। वगैरह–वगैरह। अगर कोई हमारी चोरी करता है, तो हमें बहुत रंज होता है, तो हमारा फर्ज है कि हम खुद चोरी न करें। दुश्मनी कभी पापी इन्सान से न करो लेकिन उसके पाप से करो। उस पर दया भाव रखकर उसको समझाओ और अच्छे रास्ते पर लाकर उसके पाप को धो डालो। दूसरे की माता–बहन को अपनी माता–बहन समझो, जरूरत से ज्यादा सामान अपने पास मत इकट्ठा करो, गरीब की इमदाद करो, वगैरह–वगैरह।

भगवान महावीर ने भारतवर्ष को बा–आवाज बुलन्द मोक्ष का संदेश सुनाया। उन्होंने कहा कि धर्म सिर्फ सामाजिक कराजात में नहीं है बल्कि दर हक़ीकत

सच्चाई है। मोक्ष सिर्फ सामाजिक बाहरी क्रिया कांड से नहीं मिल सकता, लेकिन सच्चे धर्म के स्वरूप का सहारा लेने से मिलता है। धर्म के आगे इन्सान और इन्सान के दरमियान रहने वाले भेदभाव भी खड़े नहीं रह सकते। कहते हुए हैरानी होती है कि महावीर की इस तालीम ने समाज के दिलों पर काबू पा लिया और पहले के खराब संस्कारों से बने हुए भावताब को बहुत जल्द नेस्तनाबूद कर दिया और सारे मुल्क को अपने मती कर लिया।

भगवान महावीर ने जहां हिंसा को बन्द किया वहां मजहबी इखतलाफात को भी दूर कर स्याद्वाद का उपदेश दिया और कहा कि सत्य अनन्त हैं इसलिए हर एक सिद्धान्त में कुछ न कुछ सच्चाई है, उसको स्याद्वाद की कसौटी पर परखो।

भगवान महावीर के पैरोकार और चेले सब तबके के लोग थे। इन्द्रभूति वगैरह उनके ग्यारह गणधर ब्राह्मण कुल में से थे, उद्दापन मेघ कुमार वगैरह क्षत्री महावीर के चेले थे, शालिभद्र वगैरह वैश्य और हरीकेशी वगैरह शूद्र ने भी भगवान की दी हुई पवित्र दीक्षा को हासिल कर ऊंचे पद को हासिल किया था। गृहस्थों में वैशालीपति राजा चेटक, मगध नरेश श्रेणिक और उनका लड़का कुणिक वगैरह कई क्षत्री राजा थे। इसीलिए भगवान उस जमाने की आमफहम भाषा में ही उपदेश दिया करते थे ताकि हर खास–आम धर्म हासिल कर सके। जैन ग्रन्थ भी प्राकृत में लिखे गये थे ताकि सब लोग समझ सकें।

आजकल का ज़माना आप सब लोगों के सामने मौजूद है। आज भारतवर्ष में लाखों बेजुबान जानवर मांस खाने के लिए रोज काटे जाते हैं। दूध देने वाली गायों के गलों पर छुरी चलाई जाती है। भारतवर्ष के आदमी भूखों मर रहे हैं, बेकारी की चक्की में दरड़े जा रहे हैं, मौजूदा हुकूमत ने हिन्दुस्तान के तमाम उद्योग हिरफत पर पानी फेरदिया, किसानों पर लगान और सौदागरों पर टैक्स इतना ज्यादा लगा दिया कि लोग टैक्स के बोझ से दबे जा रहे हैं। माल पर टैक्स, गल्ले पर टैक्स, घी–खांड पर टैक्स, दूध–दही पर टैक्स, बर्तन–भांड़े पर टैक्स, कपड़े पर टैक्स, खाने के सामान पर टैक्स, पीने के सामान पर टैक्स, रोटी–पानी पर टैक्स।

यहां तक कि नमक जैसी कारआमद चीज पर भी टैक्स। इन टैक्सों की ज्यादती से हिन्दुस्तान इस कदर दब गया है कि छत्तीस करोड़ हिन्दुस्तानी एक वक्त भी पेट भरकर नहीं खा सकते। कहर (अकाल) जुदा पड़ रहे हैं।

बवाई (छूत की बीमारी) इमराज ने जुदा दम पी रक्खे हैं। आमदनी का यह हाल है कि हिन्दुस्तान की मजमुई आमदनी फीकस छह–सात पैसे दैनिक होती है, जिससे एक आदमी एक वक्त पेट भरकर रोटी नहीं खा सकता, फिर हिन्दुस्तानियों के सर पर साठ लाख मुफ्तखोर फकीरों का भार, जिनकी वजह से पन्द्रह लाख रुपया रोज इन गरीबों की पाकिट से निकलता है। यह सब होते हुए भी हिन्दुस्तान की हिफाजत के नाम पर फौज का करोड़ों रुपयों का खर्च। एक अंग्रेज की तनख्वाह हिन्दुस्तानी से कई गुनी ज्यादा।

गरीब किसान गर्मी–सर्दी की सदा तकलीफ उठाकर कड़कती धूप में बदन को जलाकर रात दिन जाग–जाग कर भूखा–प्यासा रहकर जो कुछ जिन्स पैदा करता है उसका ज्यादातर हिस्सा तो लगान की नज़र कर देता है। बाकी बचे–खुचे में कर्ज़ की अदायगी और दीगर लोगों की नज़र नियाज का भुगतान। इस बेचारे पर क्या बचता है, यह मालूम करना हो तो गांव में जाकर मालूम करो। जहाँ देखोगे कि गरीब किसान के चूल्हे पर बर्तन नहीं, छान पर फूंस नहीं, तन को कपड़ा नहीं और पेट को पेटभर रोटी नहीं। लेकिन यह सब कुछ होते हुए भी हुकूमत के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। अगर कोई अपनी मुसीबत का रोना हुकूमत के आगे रोता है, भूख–प्यास का सवाल पेश करता है, तो बिना पूछ–प्रतीत किये जेल में ठूंस दिया जाता है। अगर ज्यादा शोर मचाता है तो ठोकरें मारकर गिरा दिया जाता है, सच है–

न तड़पने की इजाजत है न फरियाद की है।
घुट कर मर जाऊं यह मर्जी मेरे सैय्याद की है।

बेकारी का रोना कहां तक रोया जाय, न कोई तिजारत है, न धंधा। जिसको देखो वह ही बेकारी का शाकी है, मुफलिसी का शिकार। किसी ऐसी हालत में क्या किया जाये, कहां जाय जाये, ऐसे वक्त में कौन संभाल करेगा? हमको तो गरीबी की वजह से अपना प्यारा धर्म भी छोड़ना पड़ रहा है। लाखों भारतवर्ष के लाल ईसाइयों की गोद में चले जा रहे हैं। हा भगवान्! न हम दीन के रहे और न दुनिया के।

एक सदी में सारी दुनियां की लड़ाई में जितने इन्सान मर सकते हैं इससे बहुत ज्यादा सिर्फ हमारे देश के अन्दर दस साल में भूख की वजह से मर जाते हैं। यह कितना बड़ा गजब है जो आला खानदान की औरतें हैं वह घर की चाहर दीवार के अन्दर भूख के मारे तड़फ कर प्राण पहले ही दे देती हैं, लेकिन किसी के आगे हाथ नहीं पसार सकतीं।

अब ऐसी हालत में हमारा उद्धार कौन करेगा, हमारी मुसीबतों का खात्मा किस आत्मा के जरिये होगा और हमको आजादी कौन दिलायेगा? बस यह एक सवाल हिन्दुस्तानियों के रूबरू आता है कि फौरीं ही एक महान आत्मा यानि महात्मा गांधी जी का जहूर होता है। बैरिस्टरी पास कर-लेने के बाद आपको एक महान जैन विद्वान कवि रायचन्द्र जी शतावधानी की सोहबत मिलती है और आप आत्मबल प्राप्त करके कहते हैं कि हिन्दुस्तान की मुसीबतों का खात्मा मैं करूंगा और मैं ही मुल्क को आजादी दिलाऊंगा, इस काम में मैं अपने को हर तरह से कुर्बान करूंगा। चूंकि सब इन्सान एक बराबर हैं, वह गोरे हों या काले, ब्राह्मण हों या शूद्र, छूत हों या अछूत, गरीब हों या अमीर, गर्ज सब कोई हक बराबर है, इन्सानी दर्जा एक है, एक को क्या हक है कि जब छत्तीस करोड़ हिन्दुस्तानी भर पेट खाना भी नहीं खा सकते, तो वह लाखों रुपया सालाना ऐसे गरीब देश से तनख्वाह के नाम से वसूल करे। यह अजीब तमाशा है कि घर वाले घर से बाहर मारे–मारे फिरें और दूसरे लोग बड़े--बड़े महलों में ऐशो आराम की जिन्दगी गुजारें।

महात्मा जी 'हमारी डायरी' में तहरीर फरमाते हैं कि "सबसे ज्यादा सन्तोष तो मुझे कवि रायचन्द्र भाई के लेक्चरों से ही मिलता है। उनके मजामीन मेरे ख्याल से सबके लिये मुफीद हैं। उनका चाल चलन टालस्टाय की तरह आला दर्जे का था।"

महात्मा गांधी फिर कहते हैं कि "मुझ पर तीन महापुरुषों ने गहरी छाप डाली है। टालस्टाय, रस्किन और रायचन्द्र भाई। टालस्टाय ने अपनी एक किताब व कुछ खतों किताबत से, रस्किन ने **'अन्टु दि लास्ट' किताब,** जिसका नाम मैंने गुजराती में **'सर्वोदय'** रखा है, से और रायचन्द्र भाई से तो मेरा बहुत संबंध हो गया था। जब १८९७ ई. में मैं जनूबी अफरीका में था तब मुझको चन्द ईसाई लोगों के साथ अपने कामकाज की वजह से मिलना होता था। वह लोग बहुत साफ रहते थे और धर्मात्मा थे। दूसरे धर्म वालों को ईसाई बनाना ही इनका काम था। मुझे भी ईसाई बन जाने के लिये कहा गया, लेकिन मैंने अपने दिल में पक्का इरादा कर लिया कि जब तक हिन्दू धर्म को न समझ लूं, तब तक बाप--दादा के धर्म को नहीं छोडूंगा। हिन्दू धर्म पर मुझको बहुत शकूक पैदा हो चुके थे। मैंने रायचन्द्र भाई से खतो–किताबत शुरू की। उन्होंने मेरे तमाम शकूक रफै कर दिये। जिससे मुझको शान्ति हासिल हुई और हिन्दू धर्म की फिलासफी पर मेरा

और दृढ़ श्रद्धान हो गया और मैंने समझा कि सिर्फ हिन्दू धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो शान्ति देने वाला है। इस वाकफियत के जरिये रायचन्द्र भाई थे। इसलिए रायचन्द्र भाई में और भी विश्वास बढ़ गया।"

भारतवर्ष की दुर्गति देखकर महात्मा गांधी ने अपने जीवन का लक्ष्य पांच व्रत बनाये जो कि भगवान् महावीर ने धारण किये थे। उन पर अमल करना शुरू किया यानि अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। आज महात्मा जी अहिंसा, अदमतशदुद सत्याग्रह से अपने देंश को हुकूमत की ज्यादतियों के नीचे से निकालने को तैयार हुए हैं, जिस तरह भगवान महावीर ने उस जमाने के जानदारों को छुड़ाया था। महात्मा जी हमेशा सच बोलते हैं, इसका सबूत उनकी खुद की डायरी से मिल रहा है। महात्मा जी चोरी नहीं करते और शीलवान भी आप अरसे दराज से हैं; परिग्रही तो आप इस कदर हैं कि सिर्फ एक लंगोट के सिवाय और कुछ भी कपड़ा नहीं पहनते।

कई लोगों का; जिनमें से लाला लाजपतराय जी मरहूम एक शख्स थे, कहना है कि अहिंसा कायरों और बुजदिलों का धर्म है। अहिंसा इंसान को बुजदिल व डरपोक बना देती है, लेकिन आज महात्मा जी ने भगवान महावीर की अहिंसा का सिंहनाद दुनिया के हर एक कोने में बजा दिया है और साबित करके दिखला दिया है कि अहिंसा धर्म बहादुरों व बेखोफ लोगों और धर्म पर कुर्बान हो जाने वाले परवानों का धर्म है। अहिंसा धर्म के जरिये से जबरदस्त मजालिम भी दूर हो जाते हैं।

आज महात्मा जी ने पन्द्रह साल साबरमती आश्रम में तपस्या करने के बाद अहिंसा धर्म का सुदर्शन चक्र लेकर हुकूमत के साथ टक्कर के साथ टक्कर खाने की ठानी है। अहिंसा धर्म बुजदिली सिखाता है या बेखौफी और बहादुरी, यह आज कोई महात्मा गांधी से दरयाफ्त कर सकता है। आज महात्मा जी का त्याग और तप महाबीर भगवान के राजपाट के त्याग का नज़ारा फिर आंखों के सामने लाकर खड़ा कर देता है। जिस तरह भगवान महावीर नंगे पांव, नंगे सर और नंगे जिस्म पैदल विहार करते थे आज इसी तरह महात्मा जी भी कूच कर रहे हैं। आज महात्मा जी की इस जबरदस्त हुकूमत के साथ टक्कर लेना भगवान महावीर के उस ज़माने की याद दिलाये बगैर नहीं रह सकती जबकि हिंसा के खिलाफ भगवान महावीर ने बड़ी जबरदस्त टक्कर ली थी।

आज कई लोग फरमाते हैं कि महात्मा जी की हुकूमत पर चढ़ाई ऐसी है, जैसे कि रामचन्द्र जी की रावण पर, और कृष्ण जी की कौरवों पर। लेकिन नहीं, यह बिल्कुल गलत है। उन दोनों की जंग में खून की नदियां बह गई थीं, लेकिन महात्मा गांधी प्रेम, अहिंसा, अदमतशदुद और सत्याग्रह के हथियार से लड़ाई लड़ रहे हैं–'इस सादगी पै कौन न मर जाये ऐ खुदा। लड़ते हैं मगर हाथ में तलवार भी नहीं।' इसी तरह से आज से तकरीबन अढ़ाई हजार साल पहले भगवान महावीर भी अहिंसा, प्रेम वगैरह के हथियार लेकर सामने डटे थे।

महात्मा जी ने जो एल्टीमेटम वायसराय हिन्द को दिया है, वह एक अंग्रेज के हाथ भेजा गया। वह इसलिए कि उनकी दुश्मनी किसी अंग्रेज से नहीं है, बल्कि उन मुजालिमों से है जो हिन्दुस्तानियों की तहबोवाला (छोटा–बड़ा) कर रहे हैं। उनका कहना है 'मेरे नज़दीक तो अंग्रेज भी मेरे ऐसे भाई हैं कि जैसे हिन्दुस्तानी।'

जिस तरह भगवान महावीर नशीली चीजों के खिलाफ थे इसी तरह से आज महात्मा जी भी शराब, भंग, सिगरेट वगैरह के खिलाफ हैं और इनके बायकाट पर पूरा जोर लगा रहे हैं। महात्मा गांधी अछूत उद्धार के उतने ही जबरदस्त और कट्टर हामी हैं कि जैसे भगवान महावीर थे। भगवान महावीर जिस तरह हर तबके के इन्सान को एक जैसा ख्याल करते थे वैसे ही महात्मा गांधी भी करते थे, जिसका जिन्दा सबूत यह है कि महात्मा जी ने एक शूद्र लड़की लक्ष्मीबाई को अपनी लड़की बनाया है। महात्मा जी सबसे पहले आत्मशुद्धि करके मैदान में निकले हैं।

महात्मा गांधी सब इन्सानों को एक जैसा ख्याल करते हैं। क्या ब्राह्मण! क्या शूद्र! क्या क्षत्री! क्या वैश्य! क्या हिन्दू! क्या मुसलमान! क्या हिन्दुस्तानी। और क्या अंग्रेज! महात्मा गांधी के साबरमती आश्रम में ब्राह्मण–क्षत्री, वैश्य–शूद्र, मुसलमान, पारसी, ईसाई, अंग्रेज, गरज हर एक तबका के लोग रहते हैं। किसी से कोई नफरत नहीं की जाती। एक अमरीकन लेडी, जिसका नाम महात्मा गांधी ने 'मीरा बहिन' रक्खा है, आश्रम में महात्मा जी के साथ रहती है और भी कई अंग्रेज लोग रहते हैं, जो कि महात्मा गांधी के बड़े भगत हैं।

जैसे भगवान महावीर ने हर तरह के कष्ट सहन किये थे, लकिन क्या मजाल जो उफ़ की हो, इसी तरह महात्मा जी भी अदमतशदुद से काम ले रहे हैं। चाहे हुकूमत कैद करे, पांव तले कुचले, लेकिन हम अपना हाथ बदला लेने के लिए नहीं उठायेंगे।

दसअसल देखा जाये तो महात्मा गांधी के अन्दर भगवान महावीर के जीवन की सच्ची झलक दिखाई दे रही है। महात्मा जी को मेरे ख्याल से अगर भगवान महावीर का पक्का भगत कहा जाये तो बिल्कुल बजा और दुरुस्त है। अगर जैन धर्म का मर्म समझा है, तो महात्मा गांधी ने समझा है। भगवान महावीर की संतान कहलाने वालो! अहिसा धर्म की डींग मारने वालो! महावीर के पुजारी बनने वालो! मन, वचन काय धर्म को पालने का ठेका लेने वालो! अरे भगवान महावीर की जै--जैकार बोलने वालो! क्या तुम अपने ठण्डे दिल से अपने सीने पर हाथ रखकर बतला सकते हो कि क्या तुम भगवान महावीर के सच्चे भक्त कहलाने के मुस्तहक हो? मैं तो कहूंगा कि हरगिज़ भी नहीं। तुम्हारा फर्ज़ था कि सबसे पहले इन मजालियों को दूर कराने में, मुल्क को निजात दिलाने में और छत्तीस करोड़ भाइयों को भूख से मरते हुये बचाने में, आप खुद को खतरों में डालकर मैदाने अमल में आन उतरते। लेकिन अफसोस, कि तुम्हारे कान पर जूं भी नहीं रेंगी।

भगवान महावीर का नाम ले लेना बहुत आसान है, मन्दिर में जाकर पूजा कर लेना भी बहुत सरल है। लेकिन कभी आपने इस पूजा के राज को भी समझा है? अगर आप पहले कुछ नहीं कर सके, तो अब महात्मा गांधी जी का साथ दें और दुनिया को दिखला दें कि अहिंसा धर्म के मायने बुजदिली नहीं है, बल्कि सच्ची बहादुरी और वीरता का नाम अहिंसा है। अगर अब भी आपने दुनिया के साथ चलना न सीखा और अगर अब भी आपने अपनी दुनिया और दकियानूसी रफ्तार को न बदला तो मैं पुरजोर अलफाज से कहे देता हूं कि आप इन सफाहहस्ती से मिट जायेंगे और आपका ढूंढे से भी पता न चलेगा। लिहाजा जागो! समझो! और काम करना सीखो।

शुचिता–सौम्यता–भव्यता

– डॉ. शशि कान्त

हमारे शरीर में जो रन्ध्र और विवर हैं उनका प्रधान कार्य शरीर के भीतर से मल को उत्सर्जित और विसर्जित करना है। यदि इस मल को धो–पोंछ कर साफ नहीं कर दिया जायेगा तो शरीर मल का भंडार बन जायेगा और विविध प्रकार के कृमि, कीट व बैक्टीरिया का आवास एवं आश्रय बन जायेगा। मुख–शुद्धि का अर्थ है दांतों, मसूढ़ों, जीभ, तालु व हलक की सफाई। जो कुछ हम खाते–पीते हैं, वह मुख द्वार से ही हमारे शरीर में प्रविष्ट होता है और उसके कुछ कण कहीं–न–कहीं अटक या चिपक जाते हैं जिन्हें यदि कुल्ला करके साफ न कर दिया जाय तो वे सड़कर बैक्टीरिया कीटाणु पैदा करते हैं जो मुख–पीड़ा और मुंह से दुर्गन्ध का कारण बनते हैं। पाचन क्रिया में जो मल उत्सर्जित होता है वह भी मुख–द्वार विशेषकर जीभ पर संचित होता है। इसीलिए दातून, मंजन या पेस्ट द्वारा दांतों व मसूढ़ों के मज्जन की व्यवस्था है और जीभी से जीभ को साफ करने का विधान है तथा स्वच्छ पानी से कुल्ला कर मुख–द्वार को खंगालने और नमक के उष्ण जल से गरारे करने का निदान है। नाक, कान, लिंग–योनि और गुदा द्वारों को भी पानी से अच्छी तरह धोकर पोंछ देना आवश्यक है।

यदि उत्सर्जित मल या मैल शरीर के किसी भाग पर लगा या चिपका रह जाये तो उससे विभिन्न प्रकार के चर्म रोग तथा अन्य व्याधियां उत्पन्न होती हैं, और शरीर गंधाता है। यह सामान्य शरीर–क्रिया है और इससे कोई भी पशु तथा मनुष्य अछूता नहीं है। पशु भी जमीन पर लोटकर, पत्थर और वृक्ष से रगड़कर अथवा पानी में डुबकी लगाकर अपने बदन का मैल छुड़ाते हैं। सांप भी केंचुली छोड़ देता है जो उसके शरीर पर जमा मल ही होता है। पशुओं में सफाई का एक तरीका नर और मादा द्वारा एक दूसरे को तथा नवजात एवं शिशु बच्चों को जीभ से चाटने का भी है। जीव–जगत में तन की शुचिता की जब इतनी समझ पशु योनि में भी है, तो सैनी–संज्ञाशील–प्रज्ञावान मनुष्य योनि की तो बात ही क्या?

देव प्रतिमाओं का मज्जन, अभिषेक और प्रक्षालन भी एक सामान्य क्रिया है जो मंदिरों में प्रतिदिन होती है। जिन विशाल प्रतिमाओं का प्रतिदिन मज्जन करना संभव नहीं है, उनका सावधिक मस्तकाभिषेक किया जाता है जिसका उद्देश्य भी उन पर पड़ी और जमी धूल–गर्द को साफ कर देना है। तीर्थंकर के जन्म के बाद नवजात शिशु का अभिषेक भी जन्म के उपरान्त शिशु के शरीर को माता की कुक्षि के मल आदि से स्वच्छ करना है।

उन देव प्रतिमाओं, यथा यक्ष–यक्षी आदि और श्वेताम्बर आम्नाय में तीर्थंकर, जिन के श्रृंगार का विधान है, को धो–पोंछकर साफ करके स्वच्छ परिधान में वेष्टित करने और उपयुक्त अलंकरणों से भूषित करने व सुगंध से चर्चित करने की रीति है।

जिन मंदिरों में और अन्य पूजनीय तीर्थस्थलों पर जाने के लिए भी नियम है कि दर्शनार्थी स्नान कर स्वच्छ परिधान धारण करके ही प्रवेश करें। अभिषेक पूजा के लिए नियम है कि पुनः मंदिर में स्नान किया जाय और वहीं रखे धुले हुए धोती–दुपट्टे को पहना जाय।

यह भी ध्यातव्य है कि शास्त्र की शुचिता की भी समुचित व्यवस्था है।

प्रतिमा विज्ञान के ग्रन्थों में व्यवस्था है कि जिनेन्द्र का मुखमण्डल सौम्य हो। सौम्य का अंकन अर्ध–निमीलित नेत्रों और स्मित अंकित अधर–सम्पुटों से किया जाता है। बुद्ध, राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती, गौरी आदि की प्रतिमाओं में भी मुखमुद्रा सौम्य, मन्द स्मित–हास युक्त रखी जाती है। जैनों की यक्ष–यक्षिणी तथा अन्य देवी–देवताओं की मूर्तियों में भी सौम्य मुखाकृति का आग्रह रहता है। यह आग्रह इष्ट देव के वरदानदायी संरक्षक एवं सम्मोहक स्वरूप को लक्षित करता है ताकि दर्शन करने वाले को सान्त्वना व शांति का संदेश मिल सके– वह आश्वस्त हो सके कि उसे शान्ति मिलेगी, दर्शन से उसका कष्ट और पीड़ा स्वयं ही विगलित हो जायेंगे।

मलिन काय और रौद्र रूप को अंकित करने वाली मूर्तियां भी बनती हैं जिनका उद्देश्य भय का संचार करना होता है, जैसे कि भैरव, काली। यदि साधु–साध्वी भी उस रूप में विचरण करते हैं तो वे जनमानस में भय और जुगुप्सा का संचार करते हैं। तपस्या के नाम पर आत्मपीड़न और काय–क्लेश धीरे–धीरे पर–पीड़न में एक प्रकार के आनंद की मनोवृत्ति का पोषण करता है। मन्त्र–तन्त्र, श्राप, जादू–टोना आदि का आडम्बर मूढ़ जनता को अन्धभक्ति के आश्रय से विमोहित करता है।

जो स्वच्छ होगा तन से और परिवेश व परिधान से, वही शुभ और मंगलकारक होगा – भव्य होगा। जो भव्य होगा उसी में शान्ति–प्रदायी सम्मोहन होगा। वह सादा व सरल होगा, सत्य के निकट और पारदर्शी होगा, सभी प्रकार के दिखावे व आडम्बर से रिक्त होगा। ऐसा ही देव और गुरु जो शुचिता–सौम्यता–भव्यता की कसौटी पर पूरा उतरे, दर्शनीय और श्रद्धेय है।

– ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

अकबर और जैनधर्म

– श्री रमा कान्त जैन

सन् १५४० ई. में कन्नौज के निकट बिहार के पठान सरदार शेरशाह सूरि के साथ हुए भीषण युद्ध में जबरदस्त पराजय प्राप्त कर अपना भारतीय राज्य गंवा मुग़ल बादशाह नसीरुद्दीन हुमायूँ को जब पलायन करना पड़ा तो उसने पहले सिन्ध की मरुभूमि में शरण ली। वहीं अमरकोट नामक स्थान में १५४२ ई. में हमीदा बानू बेगम की कोख से उसके बेटे अकबर का जन्म हुआ। सन् १५५५ ई. में हुमायूँ ने पुनः पंजाब, दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया, किन्तु कुछ मास बाद ही १५५६ ई. के प्रारम्भ में दिल्ली में अपने पुस्तकालय की सीढ़ी से गिरकर बादशाह हुमायूँ की मृत्यु हो गई। उस समय उसका पुत्र जलालुद्दीन अकबर मात्र १४ वर्ष का बालक था और उसके सामने अपने पिता द्वारा विजित दिल्ली और आगरा प्रदेश, जिसे हुमायूँ की मृत्यु होते ही पठान आदिलशाह सूरि के मन्त्री एवं सेनापति हेमू ने आक्रमण कर हस्तगत कर लिया था, को पुनः प्राप्त कर लेने तथा भारत में अपने अस्तित्व की रक्षा की कड़ी चुनौतियां थीं। अकबर का राज्याभिषेक पंजाब के जिला गुरुदासपुर में कलानौर गाँव के बाहर बाग में ईंटों के कच्चे चबूतरे पर १४ फरवरी, १५५६ ई. को हुआ था। उस समय उसका राज्याधिकार आस–पास के दस–बीस गाँवों पर ही रह गया था। वह धन–जन दोनों से हीन था। मुट्ठी भर सेना हाथ में थी। बैरमखाँ जैसे इने–गिने विश्वासी, स्वामिभक्त और उत्साही सरदार उसके साथ थे। अपने पिता के संघर्षपूर्ण जीवन के क़ारण उसकी कोई शिक्षा–दीक्षा भी नहीं हो पाई थी। देश की राजनैतिक स्थिति बड़ी विषम थी। दिल्ली के सिंहासन के लिये ही उसके सामने तीन प्रतिद्वन्द्वी दावेदार– हेमू विक्रमादित्य, आदिलशाह सूरि और सिकन्दरशाह सूरि थे और उत्तर भारत में उस समय भीषण अकाल पड़ रहा था। ऐसी विषम परिस्थितियों में अकबर के सामने तीन ही मार्ग थे– या तो हुमायूँ की भांति भारत छोड़कर भाग जाय या सब आकांक्षाओं को तिलांजलि देकर सामान्यजन की भांति यहीं बस जाये, अथवा राज्योद्धार का प्रयत्न करे। अकबर ने इस तीसरे वीरोचित मार्ग को चुना और शीघ्र ही पानीपत की ऐतिहासिक रणभूमि में १५५६ ई. में हेमू को परास्त कर दिल्ली और आगरा पर पुनः अधिकार कर लिया। आदिलशाह और सिकन्दरशाह सूरि ने भी फिर अकबर का कोई विरोध नहीं किया। अकबर की इस ऐतिहासिक विजय ने भारत में मुग़लवंश और मुग़ल साम्राज्य के पैर जमा दिये।

अकबर जन्मतः पूर्ण विदेशी और विधर्मी था भारत और भारतवासियों के लिये। वह पढ़ा– लिखा भी नहीं था, किन्तु वह बुद्धिमान और दूरदर्शी था। उसने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि यदि उसे भारत में अपना राज्य जमाना है, तो सैन्य–शक्ति के बल पर साम्राज्य –विस्तार करने के साथ–साथ इस देश की बहुसंख्यक मुसलमानेतर रिआया का दिल भी जीतना होगा। अतः उसने भारतीय और भारतीयों का बनकर राज्य करने का निश्चय किया और उदारता, समदर्शिता और सर्वधर्म सहिष्णुता की कुशल नीति को अपनाया। अपने राज्य के प्रारम्भिक वर्षों (१५६०–६४ ई.) में ही उसने युद्ध बन्दियों को गुलाम बनाये जाने की पुरानी प्रथा का अन्त कर दिया, समस्त हिन्दू और जैन तीर्थों पर पूर्ववर्ती सुलतानों द्वारा लगाये गये यात्री कर को समाप्त कर दिया तथा समस्त मुसलमानेतर भारतीयों पर लगा हुआ जज़िया नामक अपमानजनक कर भी हटा लिया।

रांक्या गोत्रीय, श्रीमाल जातीय जैन रणकाराव सम्राट अंकबर की ओर से आबू प्रदेश के शासक नियुक्त थे और श्रीपुरपट्टन से शासनकार्य चलाते थे। उनके पुत्र राजा भारमल्ल को अकबर ने सांभर (शाकम्भरी) के सम्पूर्ण इलाके का शासक नियुक्त किया हुआ था। राजा भारमल्ल नागौर में निवास करते थे। स्वर्ण और जवाहरात का व्यापार उनके हाथ में था, उनकी अपनी सेना थी और उनके अपने सिक्के चलते थे। उनकी दैनिक आय एक लाख टका (रुपये) थी और स्वयं सम्राट के कोष में प्रतिदिन वह पचास हजार टका देते थे। सम्राट उनका बहुत सम्मान करते थे और शहजादा सलीम उनसे भेंट करने बहुधा उनके दरबार में नागौर जाया करता था। राजा भारमल्ल धर्मात्मा, उदार, असाम्प्रदायिक मनोवृत्ति के विद्यारसिक श्रीमान थे। धार्मिक कार्यों और दानादि में वह प्रचुर धन खर्च करते थे। काष्ठासंघी भट्टारकीय विद्वान पाण्डे राजमल ने उनकी प्रेरणा से उनके लिये **'छन्दोविद्या'** नामक महत्वपूर्ण पिंगलशास्त्र की रचना की थी। उसमें विविध छन्दों का निरुपण करते हुए कवि ने अपने आश्रयदाता राजा भारमल्ल के प्रताप, यश, वैभव और उदारता आदि का भी सुन्दर परिचय दिया है।

अग्रवाल जैन साह रनबीर सिंह अकबर के समय में एक शाही खजांची और एक शाही टकसाल के अधिकारी थे। उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर अकबर ने उन्हें वर्तमान पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक जागीर प्रदान की थी जिसमें उन्होंने अपने नाम पर 'सहारनपुर' नगर बसाया। सहारनपुर में कायम हुई शाही टकसाल के अधीक्षक वही नियुक्त हुए। उनके परिवार द्वारा कई स्थानों पर जैन मंदिर बनवाये गये बताये जाते हैं।

भटानियाकोल (अलीगढ़) निवासी गर्गगोत्रीय अग्रवाल जैन साहु टोडर आगरा की शाही टकसाल के अधीक्षक थे और अकबर के कृपापात्र थे। शाही सहायता से वह जैन तीर्थक्षेत्र मथुरा यात्रा संघ लेकर गये थे और वहाँ के प्राचीन जैन स्तूपों का जीर्णोद्धार कराकर सन् १५७३ ई. में उन्होंने समारोहपूर्वक उनकी प्रतिष्ठा कराई थी। इसी उपलक्ष्य में उन्होंने उपर्युक्त पाण्डे राजमल्ल से १५७५ ई. में संस्कृत भाषा में **'जम्बूस्वामीचरित'** की रचना भी कराई थी। साहू टोडर ने आगरा नगर में भी एक भव्य मन्दिर बनवाया बताया जाता है। कवि राजमल्ल ने अपने उपर्युक्त ग्रन्थ में बादशाह अकबर की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि ''धर्म के प्रभाव से सम्राट अकबर ने जज़िया नामक कर बन्द करके यश का उपार्जन किया। हिंसक वचन उसके मुख से भी नहीं निकलते थे, हिंसा से वह सदा दूर रहता था, अपने धर्मराज्य में उसने द्यूत और मद्यपान का भी निषेध कर दिया था, क्योंकि मद्यपान से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वह कुमार्ग में प्रवृत्ति करता है।'' सन् १५८५ ई. में साहू टोडर ने पाण्डे जिनदास नामक एक अन्य विद्वान से हिन्दी भाषा में भी **'जम्बूस्वामि चरित्र'** लिखवाया था। उस कवि ने भी अकबर के सुराज्य और साहू टोडर के धर्मकार्यों की प्रशंसा की है।

सन् १५७६ ई. में अकबर मुल्ला–मौलवियों की परवाह किये बगैर स्वयं 'इमामे – आदिल' (धर्माध्यक्ष) बन गया और उसने अपने राज्य में सभी धर्मों को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी। इसी वर्ष राजधानी आगरा में दिगम्बर जैनों ने एक मंदिर का निर्माण कराकर समारोहपूर्वक उसकी बिम्ब–प्रतिष्ठा की। आगरा के निकट शौरीपुर और हथिकन्त में तथा साम्राज्य की द्वितीय राजधानी दिल्ली में नन्दिसंघ, काष्ठासंघ एवं सेनसंघ के दिगम्बरी भट्टरकों तथा श्वेताम्बर यतियों की गद्दियां पहले से थीं। फतेहपुर सीकरी के अपने इबादतखाने में अकबर शैव, वैष्णव, जैन, पारसी, ईसाई, शिया, सुन्नी, सूफी आदि सभी धर्मों और विचारधाराओं के विद्वानों को आमन्त्रित कर उनके पारस्परिक वाद–विवाद चाव से सुनता था और यदा–कदा स्वयं भी उन वाद–विवादों में भाग लेता था। विभिन्न धार्मिक विचारधाराओं के इस प्रकार अध्ययन से उन सबका समन्वय कर उसने अपने नवीन मत 'दीने–इलाही' को जन्म दिया था।

सन् १५८१ ई. में बादशाह ने श्वेताम्बर जैनाचार्य हीर विजय सूरि को बुलाने हेतु गुजरात के सूबेदार साहबखाँ के पास सन्देशा भेजा। बादशाह के आमंत्रण पर आचार्य गुजरात से पैदल ही चलकर आगरा आये। बादशाह ने उनका भव्य स्वागत किया और उनकी विद्वत्ता एवं उपदेशों से प्रभावित होकर उन्हें **'जगद्गुरु'**

की उपाधि प्रदान की। बादशाह ने फतेहपुर सीकरी के अपने महल में जैन गुरुओं के बैठने के लिये जैन कलायुक्त एक छत्री भी बनवाई जो 'ज्योतिषी की बैठक' कहलाती थी। आचार्य हीरविजय के शिष्य विजयसेनगणि ने दरबार में 'ईश्वर कर्ता–हर्ता नहीं, विषय पर अन्य धर्मों के विद्वानों से शास्त्रार्थ किया और भट्ट नामक ब्राह्मण विद्वान को पराजित कर 'सवाई' उपाधि प्राप्त की। बादशाह ने उन्हें लाहौर में भी अपने पास बुलाया था। यति भानु चन्द्र ने बादशाह के लिये **'सूर्यसहस्रनाम'** की रचना की थी। अतः वह 'पातशाह अकबर जलालुद्दीन सूर्यसहस्रनामाध्यापक' कहलाते थे। वह फारसी के भी उद्भट विद्वान थे। बादशाह ने प्रसन्न होकर उन्हें 'खुशफ़हम' उपाधि प्रदान की थी। कहा जाता है कि एक बार बादशाह अकबर के सिर में भयंकर दर्द हुआ। भानुचन्द्र बुलाये गये। उन्होंने बताया कि वह कोई वैद्य–हकीम नहीं हैं। किन्तु जब बादशाह के विशेष आग्रह पर यति जी ने उनके माथे पर हाथ रक्खा तो बादशाह की पीड़ा दूर हो गई।

मुनि शान्तिचन्द्र का भी अकबर पर बड़ा प्रभाव था। एक बार ईदुज्जुहा (बकरीद) के निकट वह बादशाह के पास ही थे। उन्होंने ईद से एक दिन पहले वहाँ से चले जाने की बादशाह से अनुमति मांगी क्योंकि अगले दिन ईद के उपलक्ष्य में हजारों–लाखों निरीह पशुओं का वध होने वाला था। मुनि शान्ति चन्द्र ने कुरान शरीफ की आयतों से यह सिद्ध कर दिखाया कि **'कुर्बानी' का मांस और खून खुदा को नहीं पहुँचता, वह इस हिंसा से प्रसन्न नहीं होता, बल्कि परहेजगारी से प्रसन्न होता है, रोटी और शाक खाने से ही रोजे कबूल हो जाते हैं।** उन्होंने अन्य अनेक मुसलमान ग्रन्थों का हवाला देकर बादशाह और उसके उमरावों के दिल पर अपनी बात की सच्चाई जमा दी। फलस्वरूप उस वर्ष ईद पर किसी जीव का वध न किये जाने की घोषणा बादशाह ने करा दी।

बीकानेर नरेश रायसिंह के मन्त्री कर्मचन्द्र बच्छावत की प्रेरणा से अकबर ने १५९२ ई. में श्वेताम्बर यति जिनचन्द्रसूरि को खम्भात से आमन्त्रित किया और लाहौर पधारने पर उनका उत्साह से स्वागत किया। जिनचन्द्रसूरि ने अकबर का प्रतिबोध करने हेतु **'अकबर प्रतिबोधरास'** ग्रन्थ का प्रणयन किया था और बादशाह ने उन्हें 'युगप्रधान' उपाधि प्रदान की थी तथा उनके कहने से दो फ़रमान जारी किये थे। एक फ़रमान के द्वारा खम्भात की खाड़ी में मछली पकड़ने पर प्रतिबन्ध लगाया गया और दूसरे के द्वारा आषाढ़ी अष्टान्हिका में पशुवध का निषेध किया गया। सूरिजी के साथ उनके शिष्य मानसिंह, विद्याहर्ष, परमानन्द

और समयसुन्दर भी पधारे थे। बादशाह के परामर्शानुसार सूरि जी ने अपने शिष्य मानसिंह को **'जिनसिंहसूरि'** नाम देकर उन्हें अपना उत्तराधिकारी और आचार्य पद प्रदान किया था तथा यह पट्टबन्धोत्सव अकबर की सहमति से कर्मचन्द बच्छावत ने समारोहपूर्वक मनाया था। पट्टन के पार्श्वनाथ मंदिर में अंकित वृहत् संस्कृत शिलालेख में जिनचन्द्रसूरि विषयक यह सब प्रसंग वर्णित है।

मुनि पद्मसुन्दर भी बादशाह से सम्मानित हुए थे और उन्होंने **'अकबरशाही शृंगारदर्पण'** ग्रन्थ की रचना की थी। सन् १५६४ ई. में ग्वालियर निवासी कवि परिमल ने आगरा में रहकर अपने **'श्रीपालचरित्र'** की रचना की जिसमें अकबर की प्रशंसा उसके द्वारा गोरक्षा के कार्य और आगरा नगर की सुन्दरता का वर्णन है।

उपर्युक्त कर्मचन्द्र बच्छावत जब बीकानेर नरेश से अनबन होने पर अकबर की शरण मे आ गये तो उसने उन्हें भी अपना एक प्रतिष्ठित मंत्री बना लिया। कर्मचन्द्र बच्छावत ने पूर्ववर्ती सुलतानों द्वारा अपहृत अनेक धातुमयी जिनमूर्तियां मुसलमानों से प्राप्त कर उन्हें बीकानेर के मन्दिरों में भिजवाया था। कहा जाता है कि एक बार शाहजादे सलीम के घर मूल नक्षत्र के प्रथम पाद में कन्या का जन्म हुआ। ज्योतिषियों ने कन्या के ग्रह उसके पिता के लिये अनिष्टकारक बताये और उसका मुख देखने का भी निषेध किया। बादशाह अकबर ने अबुलफ़ज़ल आदि विद्वान अमात्यों से परामर्श कर मंत्री कर्मचन्द्र बच्छावत को जैन धर्मानुसार ग्रहशान्ति का उपाय करने का आदेश दिया। मंत्री ने चैत्र शुक्ल पूर्णिमा के दिन स्वर्ण–रजत कलशों से तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा का समारोहपूर्वक अभिषेक किया। पूजन की समाप्ति पर मंगलदीप और आरती के समय अकबर अपने पुत्रों और दरबारियों के साथ वहाँ आया, उसने अभिषेक का गन्धोदक विनयपूर्वक अपने मस्तक पर चढ़ाया और अन्तःपुर में बेगमों के लिये भी भेजा तथा उक्त जिन मंदिर को दस सहस्र मुद्राएं भेंट की। गुजरात में गिरनार, शत्रुंजय आदि जैन तीर्थों की रक्षार्थ अकबर ने अहमदाबाद के सूबेदार आज़मखाँ को फ़रमान भेजा था कि राज्य में जैन तीर्थों, जैन मंदिरों और मूर्तियों को कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार की क्षति न पहुँचाये और यह कि इस आज्ञा का उल्लंघन करने वाला कठोर दण्ड का भागी होगा।

उसी काल के मेड़ता दुर्ग के जैन मंदिरों के शिलालेखों में लिखा है कि अकबर ने जैन मुनियों को **'युगप्रधान'** पदवी दी, प्रतिवर्ष आषाढ़ की अष्टान्हिका में अमारि (जीवहिंसानिषेध) घोषणा की, प्रतिवर्ष सब मिलाकर छह मास पर्यन्त

समस्त राज्य में हिंसा बन्द करायी, खम्भात की खाड़ी में मछलियों का शिकार बन्द करवाया, शत्रुंजय आदि तीर्थों का करमोचन किया, सर्वत्र गोरक्षा प्रचार किया, आदि।

सन् १५९५ ई. में पुर्तगाली जैसुइट पादरी पिन्हेरो ने अपने बादशाह को पुर्तगाल भेजे एक पत्र में, अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर, लिखा था कि 'अकबर जैन धर्म का अनुयायी हो गया है, वह जैन नियमों का पालन करता है, जैन विधि से आत्मचिन्तन एवं आत्माराधन में बहुधा लीन रहता है, मद्य-मांस और द्यूत के निषेध की आज्ञा उसने प्रचारित कर दी है।'

विद्याहर्ष सूरि ने १६०४ ई. में प्रणीत अपने ग्रन्थ **'अंजनासुन्दरीरास'** में लिखा है कि "विजयसेन आदि जैन गुरुओं के प्रभाव से अकबर ने गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि पशुओं की हिंसा का निषेध कर दिया था, पुराने कैदियों को मुक्त कर दिया था, जैन गुरुओं के प्रति भक्ति प्रदर्शित की थी, दान-पुण्य के कार्यों में वह सदा अग्रसर रहता था।"

अकबर के मित्र एवं प्रमुख अमात्य अबुलफ़ज़ल की **'आइने-अकबरी'** में अकबर की उक्तियां भी दी हुई हैं जो उसकी मनोवृत्ति की परिचायक हैं। वह कहा करता था कि "यह उचित नहीं है कि मनुष्य अपने उदर को पशुओ की कब्र बनावे। बाजपक्षी के लिये मांस के अतिरिक्त कोई अन्य भोजन न होने पर भी उसे मांस भक्षण का दण्ड अल्पायु के रूप में मिलता है, तब मनुष्यों को, जिनका स्वाभाविक भोजन मांस नहीं है, इस अपराध का क्या दण्ड मिलेगा ? कसाई, बहेलिये आदि जीव हिंसा करने वाले जब नगर से बाहर रहते हैं तो मांसाहारियों को नगर के भीतर रहने का क्या अधिकार है? मेरे लिये यह कितने सुख की बात होती कि यदि मेरा शरीर इतना बड़ा होता कि सब मांसाहारी केवल उसे खाकर सन्तुष्ट हो जाते और अन्य जीवों की हिंसा न करते। जीव हिंसा को रोकना अत्यन्त आवश्यक है इसीलिये मैंने स्वयं मांस खाना छोड़ दिया।"

उपर्युक्त के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना तो अत्युक्ति होगी कि अकबर पातशाह जैन धर्मानुयायी और पूर्णतया शाकाहारी हो गया था, किन्तु इससे इतना स्पष्ट है कि वह सर्वधर्मसमभावी महान सम्राट जैन गुरुओं से भी प्रभावित रहा और उसने जीवहिंसा और मांसाहार को त्याज्य माना था।

विद्वानों का आदर करने वाले विद्यारसिक अकबर पातशाह के राज्यकाल में उसके आश्रय में तथा अन्यथा विपुल साहित्य-सृजन हुआ था। अबुलफ़ज़ल ने

'**अकबरनामा**' और '**आइने–अकबरी**' का प्रणयन किया। '**आइने अकबरी**' में जैनधर्मानुयायियों और जैन धर्म का विवरण भी संकलित है। इस ग्रन्थ की रचना में उसने जैन विद्वानों का भी सहयोग लिया बताया जाता है। बंगाल आदि के नरेशों की वंशावली उसने उन्हीं की सहायता से संकलित की बताई जाती है। अलबदायुनी और निज़ामुद्दीन ने इतिहास ग्रन्थ लिखे और फ़ैजी ने सूफी कविताएं रचीं। अब्दुर्रहीमखानखाना (रहीम) के लोकप्रिय दोहे और बीरबल के चुटकुले अकबर के दरबार की ही देन हैं। कहते हैं अकबर स्वयं भी कविता करता था और उसने '**महाभारत**' व अन्य प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का फ़ारसी में तथा फ़ारसी ग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद कराया था। कृष्णभक्त महाकवि सूरदास के पद, अष्टछाप के कवियों की भक्तिपरक रचनाएं और रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास का सुप्रसिद्ध '**रामचरितमानस**' एवं अन्य कृतियां उसी काल की हैं। नरहरि, गंग प्रभृति अन्य अनेक कवि भी अकबर के राज्यकाल में हुए। अध्यात्मरसिक कविवर बनारसीदास का जन्म भी उसके राज्यकाल में १५८६ ई. में हो चुका था। उनके आत्मचरित '**अर्द्ध कथानक**' से विदित होता है कि संवत् १६६२ (१६०५ ई.) में अकबर के निधन का समाचार सुनकर उन्हें इतना आघात लगा था कि घर पर सीढ़ी पर बैठे हुए लुढ़क गये और उनका भाल फूट गया।

जैन साहित्यकार भी अकबर के राज्यकाल में भारती का, विशेषकर हिन्दी साहित्य का, भण्डार भरने में किसी से पीछे नहीं रहे। पूर्व प्रस्तरों में उल्लिखित कृतियों के अतिरिक्त कर्मचन्द्र की '**मृगावती चौपई**', पाण्डे रूपचन्द्र का '**परमार्थी दोहाशतक**' एवं '**गीतपरमार्थी**', पाण्डे राजमल्ल की '**पंचाध्यायी**', '**लाटीसंहिता**', '**अध्यात्मकमलमार्त्तण्ड**' और आचार्य कुन्दकुन्द के '**समयसार**' पर '**बालबोधनी टीका**', भट्टारक सोमकीर्ति का '**यशोधररास**', 'ब्रह्मरायमल', (१५५६ ई.) के '**हनुमन्तचरित्र**', '**सीताचरित्र**' एवं '**भविष्यदत्तचरित्र**', विशालकीर्ति (१५६३ ई.) का '**रोहिणीव्रतरास**', सुमतिकीर्ति (१५६८ ई.) का '**धर्मपरीक्षारास**', विजयदेवसूरि (१५७६ ई.) का '**सीलरासा**', १५७६ ई. में बाग्वर (बागड़) देश के शाकवाटपुर (सागवाड़ा) के हूमड़वंशी सेठ हर्षचन्द्र और उसकी पत्नी के अनन्तव्रत उद्यापन पर भट्टारक गुणचन्द्र द्वारा आदिनाथ चैत्यालय में रची '**अनन्तजिनव्रत पूजा**', कुम्भनगर के बड़गूजर राजकुमार पद्मसिंह अपरनाम शिवाभिराम द्वारा पहले संस्कृत में '**चन्द्रप्रभु पुराण**' की तथा तदनन्तर १५८२ ई. में दिविजनगर दुर्ग (संभवतया देवगढ़) के जिनालय में '**षट्चतुर्थ–वर्तमान–जिनार्चन**' 'काव्य की रचना, पाण्डे जिनदास (१५८५ ई.) का '**जम्बूचरित्र**', '**ज्ञानसूर्योदय**', '**जोगीरासा**'

और फुटकर पद, कल्याणदेव (१५८६ ई.) की **'देवराज—बच्छराज चौपई'**, मालदेवसूरि (१५६५ ई.) की **'पुरन्दरकुमार चौपई'**, सन् १६०२ ई. में आमेर के महाराज मानसिंह के महामात्य साह नानू की प्रेरणा से मुनि ज्ञानकीर्ति द्वारा संस्कृत काव्य **'यशोधर चरित्र'** की रचना तथा उदयराज जती (१६०३ ई.) के राजनीति के दोहे आदि अकबर के राज्यकाल की देन हैं।

इन्दौर के निकट रामपुरा—भानपुरा क्षेत्र में मुग़ल बादशाह की ओर से नियुक्त शासक दुर्गभान के समय में १५५६ ई. में कमलापुर (भानपुरा से ७ मील दूर) में संघपति डूंगर ने सुन्दर 'महावीर चैत्यालय' बनवाया था, जो 'सास—बहू का मंदिर' भी कहलाता था। सन् १५६१ ई. में रणथम्भौर दुर्ग में वहां पर मुग़ल बादशाह द्वारा नियुक्त शासक जगन्नाथ के मंत्री अग्रवाल जैन खीमसी (क्षेमसिंह) ने एक भव्य जिनालय बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा कराई थी। उसी वर्ष निमाड़ (वर्तमान मध्यप्रदेश के अन्तर्गत) में सुराणावंशी संघपति साहू माणिक ने रत्नाकरसूरि से बिम्ब प्रतिष्ठा कराई थी। सन् १६०० ई. में उपर्युक्त कमलापुर में भट्टारक पद्मसागरसूरि ने 'आदिनाथ बिम्ब' प्रतिष्ठा की।

जैन इतिहास में अकबर का उल्लेखनीय स्थान इसी कारण है कि किसी भी जैनेतर सम्राट से जैन धर्म, जैन गुरुओं और जैन जनता को उस युग में जो उदार सहिष्णुता, संरक्षण, पोषण और मान प्राप्त हो सकता था वह उससे प्राप्त हुआ। यहां तक कहा जाता है कि भावदेवसूरि के शिष्य शीलदेव से प्रभावित होकर अकबर ने १५७७ ई. के लगभग एक जिन मंदिर के स्थान पर बनायी गई मस्जिद तुड़वाकर फिर से जिनमंदिर बनवाने की आज्ञा दे दी थी।

— ज्योति निकुंज,
चार बाग, लखनऊ— २२६ ००४

———

हस्तिनापुर क्षेत्र की यात्रा

– श्री अजित प्रसाद जैन

दिनांक २० अप्रैल को अहिंसा–इंटरनेशनल के प्रेमचंद जैन पत्रकारिता पुरस्कार सम्मान के निमित्त से दिल्ली जाने पर लौटते समय १५–१६ वर्ष बाद मेरठ जाना हुआ। परिवारजनों, सगे सम्बंधियों से मिलने जुलने में १०–१२ दिन कैसे व्यतीत हो गए, पता ही नहीं चला। दि. २४ अप्रैल को छोटे भाई जयप्रकाश जैन, एडवोकेट, जो मेरठ बार काउंसिल के वरिष्ठ सदस्य हैं तथा बरसों उसके अध्यक्ष भी रह चुके हैं और वर्तमान में श्री हस्तिनापुर दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के प्रधानमंत्री हैं, के साथ पुनः एक बार श्री हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कार में सफर ४५–५० मिनट में ही पूरा हो गया तथा कार ४० फुट ऊंचे टीले पर निर्मित २०० वर्ष प्राचीन बड़े मंदिर के सिंह द्वार तक सीधे ऊपर पहुंच गई। उस समय हमें बरबस अपनी स्मृति की प्रथम यात्रा का स्मरण हो आया जो हमने ७८ वर्ष पूर्व बाल्यावस्था में अपने परिवारजनों के साथ बैलगाड़ी में सारी रात सफर कर की थी (देखें शोधादर्श २२ मार्च १९९८ पृष्ठ ५६–५९ पर प्रकाशित विवरण)। श्री मंदिर जी की मुख्य वेदी में तथा अन्यत्र भी सोने का बड़ा सुन्दर काम हुआ था जो अब अत्यधिक पुराना हो जाने के कारण फीका पड़ गया था अतः अब जय प्रकाश जी उस पर पुनः सोना चढ़वा रहे हैं जिससे ऐसा लगने लगा है मानो यह वैभवपूर्ण वेदी आज ही निर्मित हुई हो।

विगत १५–२० वर्षों में क्षेत्र पर कई भव्य मंदिरों के निर्माण के अलावा बड़ी संख्या में समस्त आधुनिक सुविधाओं युक्त फ्लेटों का भी निर्माण हो गया है, भगवान ऋषभदेव की निर्वाण स्थली कैलाश पर्वत की रचना भी एक कृत्रिम टीला बनाकर की गई है। दूर से देखने पर उसमें केवल छोटे–छोटे चैत्यालयों का समूह ही दृष्टिगोचर होता है। थोड़ी ही दूर पर श्वेताम्बर क्षेत्र के परिसर में भी निर्वाण स्थली की अष्टापद गिरि के नाम से रचना का निर्माण चल रहा है जिसका ढांचा अभी अधूरा है। देखने में लगता है जैसे आठ कठियां वाले गोल गुम्बज के आकार की इमारत बनाई जा रही हो।

कैलाशगिरि–अष्टापद गिरि की रचना का (किसी भी) तीर्थ क्षेत्र पर निर्माण करने का प्रयोजन यही होता है कि तीर्थयात्री इसके दर्शन करके आदि तीर्थंकर की निर्वाण स्थली के दर्शन का पुण्य लाभ भी ले सकें। किन्तु अच्छा होता यदि परम्परागत रचना का जो निर्माण किया जाता है वह वास्तविकता के भी कुछ

निकट होता। यह आजतक अन्तिम रूप से निर्णय नहीं हो पाया है कि यदि कैलाश का ही अपर नाम अष्टापद गिरि है तो वह हिमालय पर्वत श्रेणी का कौन सा शिखर है। वैसे जैन धर्मावलम्बी जन साधारण का विश्वास यही है कि कैलाश–मानसरोवर ही भगवान की सही निर्वाण स्थली है। भारत सरकार के मार्गदर्शन में प्रतिवर्ष कैलाश–मानसरोवर की यात्रा आयोजित की जाती है जिसमें ३००–४०० यात्री सम्मिलित होते हैं किन्तु कदाचित् ही कभी कोई जैन यात्री उनमें सम्मिलित होता हो। हमारा सुझाव है कि हस्तिनापुर या महावीर जी जैसे सम्पन्न तीर्थक्षेत्र को किसी जैनी ड्राफ्ट्समैन को, जो नक्शे डिजाइन करने में निष्णात हो, अपनी ओर से स्पान्सर करके तथा आर्थिक सहायता देकर उक्त यात्रा दल में भेजना चाहिए जो कैलाश के प्रत्यक्ष दर्शन कर उसका सही नक्शा बना कर समाज के सम्मुख प्रस्तुत करे ताकि उस नक्शे को ही कैलाश पर्वत की भावी रचनाओं में आधार बनाया जा सके।

श्री हस्तिनापुर क्षेत्र के भाई जयप्रकाश जी के कुशल मार्गदर्शन में बहुमुखी विकास एवं प्रगति को देखकर अत्यधिक संतोष हुआ। क्षेत्र पर एक शुद्ध भोजनालय भी बारहों महीने चलता है जिसमें बहुत ही वाजिब मूल्य पर शुद्ध स्वादिष्ट सात्विक भोजन उपलब्ध कराया जाता है।

हमारे भांजे श्री हुकमचंद जी भी हमारे साथ आए थे। उनके विवाह के उपलक्ष्य में ही उनके दादा जी ने क्षेत्र के विशाल मानस्तम्भ का निर्माण कराया था जिसके दर्शन सिंह द्वार से ही होते हैं। श्री हुकमचंद जी मेरठ नगर की जैन बिरादरी के वर्षों महामंत्री रहे हैं तथा हमें सारे रास्ते बिरादरी की विस्तृत जानकारी देते रहे। क्षेत्र के मंदिरों का दर्शन करने के पश्चात् जम्बूद्वीप क्षेत्र के दर्शन करने गए जो पू. माताजी गणिनी ज्ञानमती जी की अनुपस्थिति में श्रीहीन लग रहा था। वहां भी कमल मंदिर आदि कई भव्य निर्माण इस बीच हो गए हैं। वहां अपने बाल सखा भाई आनंद प्रकाश जी एम.ए. से भेंट की जो वहां अपना स्वयं का कमरा (प्रेम कुटीर) बनाकर विगत कुछ वर्षों से सही अर्थों में वानप्रस्थ जीवन बिता रहे हैं तथा सारा समय पूर्ण स्वस्थ रहते हुये योग–ध्यान–धार्मिक शिक्षण, वैयावृत्ति आदि में लगा रहे हैं। उन्होंने कुछ धार्मिक पुस्तकें भी लिखी हैं जिनमें अपने जीवन के अनुभवों का निचोड़ भरकर रख दिया है। लम्बे अंतराल के बाद उनसे भेंटकर बड़ा आनंद हुआ।

— पारस सदन, आर्य नगर,
लखनऊ

धर्म का मूल–सम्यग्दर्शन

– श्री ओम पारदर्शी

धर्म का आधार ही देव–तत्व है। जिनेश्वर देव ही धर्म के मूल उत्पादक हैं। उन्हीं के द्वारा धर्म का प्रथम प्रकाश एवं प्रचार हुआ है। गणधर, आचार्य, उपाध्याय, उपदेशक, मुनिवर आदि धर्म का प्रचार करते हैं। वे सब तीर्थंकर भगवान रूपी कल्पवृक्ष से गिरे हुए मनोहर एवं सुगंधित पुष्पों की सुगन्ध मात्र हैं। भगवान महावीर ने अपने प्रवचन में ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मोक्ष का मार्ग बतलाया है। एतदर्थ जिनेश्वर भगवन्त रूपी अमृत–कुण्ड के जल की प्याऊ हैं ये सब।

सम्यक्त्व का स्वरूप–

इस जीवन में अरिहंत भगवान ही देव हैं मेरे, सुसाधु ही मेरे गुरु हैं और जिनेश्वर–प्रणीत तत्व ही मेरा धर्म है। यह सम्यक्त्व मैंने जीवन पर्यन्त ग्रहण कर लिया है। इस प्रकार की हार्दिक अभिव्यक्ति ही सम्यक्त्व है। इस प्रकार आत्मा के शुभ भाव को ही जिनेश्वर भगवन्त ने धर्म कहा है। देव के विषय में देव बुद्धि, गुरु के प्रति गुरु बुद्धि और धर्म में शुद्ध धर्म बुद्धि ही सम्यक्त्व कहलाती हैं सम्यक्त्व का महत्व अवर्णनीय है। एतदर्थ सम्यग् दर्शन–ज्ञान और चारित्र को 'रत्नत्रय' कहा गया है। क्योंकि ये तीनों ही रत्न के समान अमूल्य हैं। इन तीन रत्नों में भी सम्यग्दर्शन रूपी रत्न तो अत्यधिक मूल्यवान है। क्योंकि इसी पर शेष दोनों रत्नों का महत्व है। यदि सम्यग्दर्शन रूपी रत्न नहीं तो ज्ञान और चारित्र का मूल्य भी नकारात्मक बन जाता है। यह अटूट श्रद्धा रूपी रत्न ही भव–सागर पार करने का अमोघ अस्त्र है। यही धर्म बीज या बोधि–बीज है । इसी भूमि पर चारित्र का कल्पवृक्ष उत्पन्न होता है। जिससे मोक्ष रूपी अमृत–फल प्राप्त होता है। अर्थात् आत्मा को परमात्मा बनाने वाले तत्वों पर पूर्ण श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन का महत्व–

इस समय केवलज्ञान तो अलभ्य है ही। उस उदय–काल में केवलज्ञान जितना दुर्लभ नहीं था, उतना दुर्लभ आज सम्यग्दर्शन हो गया है। श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य आज से ६०० वर्ष पूर्व कह गए हैं– **'इस समय सम्यक्त्व की प्राप्ति केवलज्ञान के समान माननी चाहिए।'** वर्तमान काल उससे भी अधिक हीन हो रहा है। इसलिए निर्ग्रन्थ–प्रवचन के रसिकों–श्रावकों–साधकों को सम्यग्दर्शन

रूपी महान रत्न को सुरक्षित रखने की पूरी–पूरी सावधानी रखनी चाहिए। क्योंकि यह सम्यग्दर्शन ऐसा अनमोल रत्न है कि धारक की सभी मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं।

यह चिन्तामणि रत्न से अधिक मूल्यवान है। चिन्तामणि रत्न भौतिक वस्तु देता है, किन्तु सम्यग्दर्शन आत्मा को अखण्ड सुख देता है। उसे मोक्ष प्रदान करता है। ऐसे विश्व में सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वोपरि अनमोल रत्न की बड़ी सावधानी से रक्षा करनी ही चाहिए। सावधान रहें, क्योंकि मूल्यवान वस्तु को लूटने वाले भी बहुत होते हैं। तदनुसार इस महानिधि पर डाका डालने वाले भी अनेकानेक हैं। सावधान अनन्तानुबंधी कषाय और दर्शन मोहनीय कर्म का उदय इसका मूल कारण है। बाह्य निमित्त कई मिल जाते हैं, यथा कुप्रवचन, संसार–मार्ग, मध्यम मार्ग आदि–आदि। इनके साथ रहने वाला कुतर्क–जाल भोले–भाले सम्यग्दृष्टियों को अपने चक्कर में फंसाकर उनकी इस महानिधि को लूटकर दरिद्री बना देते हैं। अनेक मोहक विचारणाओं ने लाखों जैनियों से इस रत्न को लूट लिया है। एतदर्थ सच्चे जैनियों को परम मान्य जैनागमों के बताए हुए मुक्ति–मार्ग पर दृढ़ श्रद्धा रखते हुए इस अनमोल रत्न 'सम्यग्दर्शन' की रक्षा करनी चाहिए।

कुतर्कों और अन्य दर्शनीय ठाठ–चमत्कार आदि से प्रभावित होकर भ्रमित होना, मन में धर्म, आगमों–निगमों, शास्त्रों, सूत्रों आदि के प्रति शंका उत्पन्न होना ही सबसे बड़ा खतरा है। इससे मात्र सावधान ही नहीं रहना है, बल्कि जैन धर्मावलम्बी श्रावक बन्धुओं को भी सावचेत करना हमारा परम पावन नैतिक कर्तव्य है। धर्म के प्रति सन्देह हमारे अल्पज्ञान के कारण ही उठता है। यदि कतिपय गहन–गम्भीर विषय हमारी समझ में नहीं आवे, तो कदापि सन्देह नहीं करना चाहिए। **भगवती सूत्र** १ उ. ३ में लिखा है कि "जीव में ज्ञानान्तर, दर्शनान्तर तथा चारित्रान्तर आदि तेरह कारणों से शंका–कांक्षादि उत्पन्न होकर कांक्षा मोहनीय (दर्शन मोहनीय =संशय–मोहनीय) का वेदन करता है। स्वयं जिनेश्वर भगवंत ने जो कहा है, वही सत्य है, सन्देह रहित है, ऐसा सोचकर श्रावक सन्देह रहित हो जाय तो वह मार्ग पर स्थित है और भगवान की आज्ञा का आराधक होता है।

सम्यग्ज्ञान से जीवादि को पदार्थों और हेय, ज्ञेय तथा उपादेय का ज्ञान होता है। किन्तु उस ज्ञान के साथ **'श्रद्धा'** गुण नहीं तो वह लाभप्रद नहीं होता। जाने हुए पर विश्वास होने से ही आचरण से रुचि होती है। बिना श्रद्धा का ज्ञान मिथ्यादृष्टि का होता है। जिसे शास्त्रीय–परिभाषा में **'दीपक–सम्यक्त्व'** अथवा

(शेष पृष्ठ ४७ पर)

चिन्तन कण–१

धर्म–अधर्म

विश्व के आकाश में ये दो निष्क्रिय अजीव काय अरूपी शक्तियां व्याप्त हैं, जिनका उपकार गति और स्थिति में सहायक होना है।

इन असंख्यात–प्रदेशी द्रव्यों की सब धर्मग्रन्थ व्याख्या करते हैं कि उदासीन रूप से धर्म द्रव्य गति में और अधर्म द्रव्य स्थिति में इस प्रकार उपकार करता है जैसे जलचर जीवों को जल गति करने में और छायादार वृक्ष ग्रीष्म में थके हुये मुसाफिरों में विश्राम करने में निमित्त बनते हैं।

प्रत्येक क्रिया में निमित्त की आवश्यकता कर्ता को होती ही है। किन्तु जिज्ञासु को यह शंका लगी रही कि गति–स्थिति के निमित्त द्रव्यों को धर्म–अधर्म संज्ञायें क्यों दी गयीं? धर्म–अधर्म तो बड़े प्रसिद्ध शब्द हैं जो पुण्य–पाप शुभ–अशुभ, सद्गति–दुर्गति, सुस्थिति–दु:स्थिति से संबंध रखते हैं?

समाज के सर्वमान्य प्रमुख विद्वान को शंका भेजी गयी तो उनका उत्तर यही प्राप्त हुआ कि बड़े आचार्यों की यही व्याख्या है। जिज्ञासु की मानसिक उथल पुथल चलती ही रही क्योंकि छायादार वृक्ष में विश्राम लेना अधर्म का निमित्त कैसे मान लिया जाय और पतन की ओर गति करने में धर्मद्रव्य का निमित्त प्राप्त होना भी अनोखी बात होगी।

निमित्त शक्तियों को उदासीन कहना भी उन शक्तियों का अपमान है। उनसे प्रेरणा भी प्राप्त होती है। साधक उनका उपासक हो जाय तो प्रेरणादायक हो धर्म की दिशा में, गति में सहायता भी प्राप्त होती रहेगी।

अब सूत्र पर विचार गया तो देखा कि दोनों द्रव्यों का उपकार एक ही सूत्र में बताया है–अर्थात् धर्मद्रव्य का उपकार धर्म की दिशा के पथिक की गतिस्थिति में निमित्त बनना और अधर्म द्रव्य का उपकार अधर्म की दिशा में जाने की घटनाओं में निमित्त बनना। अब यह भी शंका दूर हो गयी कि इन द्रव्यों के नाम धर्म--अधर्म जिनवाणी में क्यों हैं।

इस संबंध में आचार्य रजनीश की महावीर वाणी के व्याख्यान में अपनी शंका की यथार्थता और उसका समाधान देखकर आत्मविश्वास और संतोष दृढ़ हो गये हैं। सूत्र जी का अर्थ बदलने की धृष्टता भी मैं नहीं कर रहा हूं। प्रचलित अर्थ निकल सकता था–तभी तो एक मत से सारे साहित्य में प्ररूपित हो गया।

– सुखमाल चंद्र जैन

एफ–३, ग्रीनपार्क (मेन), नई दिल्ली–१६

चिन्तन कण–२

जीव का भी मरण होता है

(शोधादर्श–४६ में प्रकाशित श्री धन्य कुमार जैन के चिन्तन कण 'जीव का मरण हिंसा नहीं' की प्रतिक्रिया में विद्वान लेखक ने अपना यह चिन्तन प्रस्तुत किया है– सम्पादक)

जीव का मरण हिंसा न भी हो तो भी उसे मारना तो हिंसा ही है, नहीं तो फिर हिंसा क्या है? शरीर समाप्त होना उसमें से आत्म तत्व का निकलना है। आत्मा के बिना यह शरीर पुद्गल है आत्मा युक्त शरीर जीव है, इस जीव का घात हिंसा है। संवेदना, चेतना, प्राण, स्वयं के सुख के लिये प्रयत्नशीलता जीव तत्व की विशेषता है। प्राणी मात्र को दुख पहुंचाना उसे तकलीफ देना या घात करने की चेष्टा करना क्या केवल मस्तिष्क की कुटिलता मात्र है? पीड़ा का अहसास जिस तत्व को होता है, उस तत्व को क्या कहेंगे? मेरे विचार से जीव को प्रताड़ित करना या घात करना हिंसा ही है। आत्मा का मरण तो नहीं होता इसलिये आत्मा और शरीर संयुक्त होकर जीव कहलाता है।

मरण जीव का ही होता है यद्यपि स्वाभाविक मरण को हिंसा नहीं कहा जा सकता। जीव ही जीवन जीता है, जीना ही जीवन है। यदि जीव ही आत्मा है तो मानसिक पीड़ा व अन्य सांसारिक दुःखों व सुखों से संवेदित होने वाले उस आन्तरिक अवयव को क्या नाम देंगे? इसीलिए आचार्यों द्वारा जीव हिसा को हिंसा कहना उचित ही है। देह तो पुद्गल है इसमें चैतन्यता जीवन है, जीवन का अन्त मृत्यु है। वही जीव का भी व्यवहारतः अन्त है वही शरीर का भी अन्त है। आत्मा को ही जीव समझने से भ्रान्ति उत्पन्न होती है। व्रतों को यह जीव धारण करता है आत्मा या शरीर नहीं जीव के संयम धारण करने से कर्मों की निर्जरा होकर आत्मा जहाँ शुद्ध स्वरूपी होती है, शरीर को कष्ट हो सकता है। परोपकार आदि पुण्य कार्य करने से जो संतुष्टि मिलती है वही तो आत्मसंतुष्टि है। जीव प्रेरक तत्व है आत्मा का भी और शरीर का भी। जब यह आत्म तत्व की संतुष्टि की ओर लग जाता है तो शरीर तत्व गौण हो जाता है और जब यह भोग विलास आदि से शरीर तत्व को ध्यान देता है तो आत्म तत्व गौण होने लगता है।

सिद्धान्ताचार्य नेमीचंद देव ने जीव की नौ विशेषता बताई हैं। **जीवो उपओगमओ अमुत्ति, कत्ता सदेह परिमाणों भोत्ता सन्सारत्थो, सिद्दो विस्सोढ्गई।** जीव उपयोगमय है, इसका उपयोग शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये हो या आत्मिक उन्नति के लिये यह मानव पर निर्भर है, अदृश्य है, कर्ता है जिस शरीर

में है वही उसका परिमाण है, सुख–दुख का एहसास भी इसे ही होता है, संसार में स्थित है सिद्ध है निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर रहने वाला है, तभी तो पाप युक्त कार्य करने से कहीं कुछ ठेस सी लगती है।

जीव शरीर एवं आत्मा से संयुक्त भी है और नहीं भी। वह आत्म तत्व भी है और शरीर तत्व भी। इसे भोगादिक में लगाने पर आत्मा का स्वरूप मलिन होता है और संयमादिक द्वारा कर्मों की निर्जरा होकर शुद्ध स्वरूप आत्मा का भी इसी से दर्शन होता है। इस पर स्याद्वाद और अनेकान्त के परिप्रेक्ष्य में ही विचार किया जाना चाहिये। निश्चय से ही तत्व आत्मा का स्वरूप हो सकता है, किन्तु व्यवहारतः वह पुद्गल स्वरूपी भी है। शरीर की समस्त चेष्टाओं का अंत होना मरण है किन्तु शरीर के साथ, उसका चिंतन, स्वभाव समस्त दोष, कार्यशैली, कुटिलता, मृदुता भी तो नष्ट होते हैं।

अतः मेरे विचार से शरीर का ही नहीं जीव का भी मरण होता है।

– अशोक कुमार जैन, अशोक आयल मिल, तिजारा– ३०१४११

(पृष्ठ ४४ का शेषांश)

'विषय–प्रतिभास ज्ञान' कहते हैं। सम्यग्ज्ञान पर श्रद्धा होने से ही सम्यग्दृष्टि माना जाता है। **उत्तराध्ययन सूत्र** अ. २८ गा. ३५ में लिखा है **'नानेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे'** अर्थात् ज्ञान से आत्मा जीवादि भावों को जानती है और दर्शन से श्रद्धान करती है। श्रद्धा का शुद्ध होना और उसे दृढ़ीभूत करना ही सम्यग्दर्शन की आराधना है।

जिसमें सम्यग्दर्शन नहीं, उसकी सभी क्रियाएं कर्म–बंधन रूप ही होती हैं। **सूयगडांग सूत्र** अ. ८ में कहा है **"जो व्यक्ति महान भाग्यशाली और जगत में प्रशंसनीय है, जिनकी वीरता की धाक जमी हुई है, किन्तु वे धर्म के रहस्य को नहीं जानते हैं और सम्यग्दृष्टि से रहित है, तो उनका किया हुआ सभी पराक्रम, दान, तप आदि अशुद्ध है। कर्म–बन्ध का ही कारण है।"**

निष्कर्ष यह है कि सम्यग्दर्शन का आधार रूप भूमिका है, जिसके ऊपर चारित्र रूपी भव्य प्रासाद खड़ा किया जा सकता है। जब तक दर्शन रूपी आधार (नींव) दृढ़ नहीं हो जाए, तब तक पूर्वों का श्रुत भी मिथ्याज्ञान रूप बना रहता है। कहा है 'चरित्र–भ्रष्ट आत्मा (सर्वथा) भ्रष्ट नहीं है, किन्तु दर्शन–भ्रष्ट आत्मा ही भ्रष्ट है, पतित है। जो दर्शन–भ्रष्ट नहीं है, वह जीव संसार में परिभ्रमण नहीं करता। अतः धर्म का मूल सम्यग्दर्शन ही है।

– उत्तरी आयड, उदयपुर– ३१३००१

श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, गुरुवार, ५ जून २००३ ई. को प्रातःकाल तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र. के लखनऊ स्थित शोध पुस्तकालय में श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में मंगलाचरण स्वरूप जिनवाणी– वन्दना के साथ श्रुतपंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। श्रुत पंचमी पर्व के ऐतिहासिक महत्व पर तथा इस दिन २७ वर्ष पूर्व १९७६ ई. में की गई इस शोध पुस्तकालय की स्थापना के सम्बन्ध में समिति के महामंत्री श्री अजित प्रसाद जैन ने प्रकाश डाला। डॉ. पूर्णचन्द्र जैन और श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' ने श्रुतावतार और जैन आगमों के लिपिकरण के सम्बन्ध में प्रकाश डाला।

इस अवसर पर समिति के संस्थापक–महामंत्री और इसकी चातुर्मासिक शोध–पत्रिका 'शोधादर्श' के प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जैन का विगत २० अप्रैल, २००३ ई. को नई दिल्ली में 'अहिंसा इंटरनेशनल प्रेमचंद जैन–पत्रकारिता पुरस्कार (वर्ष २००२)' से सम्मानित किये जाने के उपलक्ष्य में अभिनन्दन किया गया। संयोजक डॉ. शशिकांत ने अभिनंदन पत्र का वाचन किया।

श्री रमाकान्त जैन ने समिति के संस्थापक–आजीवन सदस्य डॉ. शशिकान्त को अमेरिकन बायोग्राफिकल इन्स्टीट्यूट द्वारा 'Man of The year-2003' की प्रतिष्ठात्मक उपाधि के लिये चयनित किये जाने का सुसमाचार दिया और सभा में उनका भी अभिनन्दन किया गया।

इस अवसर पर सर्वश्री लूणकरण नाहर, कन्हैयालाल जैन, नरेशचन्द्र जैन, आदित्य जैन और रमाकान्त जैन ने पुस्तकालय को महत्वपूर्ण साहित्य भेंट किया, जिसके लिये उनका साधुवाद किया गया। जिनवाणी की स्तुति के साथ कार्यक्रम पूर्ण हुआ और प्रभावना का पुण्यलाभ श्री लूणकरण नाहर जी ने लिया।

– रमा कान्त जैन

अमर ज्योति

११ जून को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास–मनीषी विद्यावारिधि **डॉ. ज्योति प्रसाद जैन** की १५वीं पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति में गोष्ठी और काव्य–संध्या का आयोजन **'शोधादर्श'** एवं **'समन्वयवाणी'** पत्रिकाओं के प्रधान सम्पादक **श्री अजित प्रसाद जैन** की अध्यक्षता में हुआ। नगर की लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था 'प्रतिष्ठा' के अध्यक्ष काव्यमनीषी **डॉ. रामाश्रय 'सविता'** इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि तथा ब्रजभाषा के छन्दकार वयोवृद्ध **गया प्रसाद तिवारी 'मानस'** जी विशिष्ट अतिथि रहे। श्री रमाकान्त जैन ने संचालन किया।

वाग्देवी सरस्वती की मूर्ति और श्रद्धेय डाक्टर साहब के चित्र पर माल्यार्पण, दीप प्रज्ज्वलन और डाक्टर साहब द्वारा रचित **'वीतराग स्वरूपम्'** और **'जय महावीर नमो'** के समवेत गायन तथा श्री शिवभजन 'कमलेश' द्वारा वाणी–वंदना के साथ कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। डॉ. शशिकांत ने अपने प्रास्ताविक उद्बोधन में सभी समागत का स्वागत करते हुए अपनी कृतियों से अमर डॉक्टर साहब द्वारा भारतीय इतिहास एवं वाङ्मय के क्षेत्र में किये गये अवदान पर प्रकाश डाला। श्री अंशु जैन ने डाक्टर साहब के आलेख **'जैन धर्म और संस्कृति'** का वाचन किया। डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, डॉ. विजय कुमार जैन और सर्वश्री राजेन्द्र कुमार जैन, कैलाशभूषण जिन्दल, नरेशचंद्र जैन और अजित प्रसाद जैन ने डाक्टर साहब सम्बंधी अपने संस्मरण सुनाते हुए उन्हें अपने श्रद्धासुमन अर्पित किये।

काव्य–संध्या का श्रीगणेश हुआ डॉक्टर साहब के प्रति डॉ. महावीर प्रसाद 'प्रशान्त' की पंक्तियों से–

'मानवता के अमर सन्त का चिरवन्दन है।
इस 'प्रशान्त' का मृदुल नमन है, अभिनन्दन है।।'

और उसे गति दी वीरेन्द्र 'अंशुमाली' ने–

"नमन ओ पूरब के दिनमान, आज भी आलोकित मन–प्राण,
उच्चतम जैसे व्योम वितान, किया नव जैन ज्योति सन्धान।।'

द्वारा। प्राण फूंकने का कार्य गीतकार शैलेन्द्र शुक्ल के बोलों ने किया–

'आपकी नज़र में क्या ज़िन्दगी के माइने।
हम तो बस जिया किये, सामने थे आइने।।'

अरुषा और आकांक्षा बालिकाओं ने

चिन्तनपरक रचना "**बहो, बहो, बहते चलो**" और नन्हीं पलक जैन ने बाल–कविता "**अच्छे बच्चे बनना तुम। नहीं किसी से डरना तुम।**" सुनाई। ओज के कवि विष्णुदत्त शर्मा ने डाक्टर साहब को काव्यांजलि अर्पित की– "**ज्योति प्रसाद प्राणों से प्यारे, लिखते शब्द हमारे।**" इं. राजीवकान्त की चिन्तनप्रद रचना के बोल थे–"**कल जब मैं दुनिया में आया, रोया था। कल से आज तक सोया था।**" श्याम नारायण –'श्याम' की रचना के शब्द रहे–

"मिले अवरोध भी तो क्या, जलें जो हाथ भी तो क्या
हमें तो आंधियों से दीप की लौ को बचाना है
हमारा हर कदम मंजिल पहुंचने का बहाना है।"

डॉ. राका जैन का गीत था–

आज कौन सा गीत सुनाऊं
समता सृष्टि सहज हो जाए,
ऐसी मृदु सरगम भर लाऊँ।।

इतिहास मर्मज्ञ डॉ. शशिकांत के स्वर थे–

काल का चक्र चलता रहेगा।
इतिहास प्रतिपल बनता रहेगा।।

जहाँ पुरानी स्मृतियों में खोये शिवभजन कमलेश के गीत–

प्यार बहुत करते थे, संस्कार भरते थे
कदम–कदम जिनका सहयोग।
कहां गए ऐसे वे लोग।।

ने श्रोताओं को मोहा, व्यंग्यकार रमाकान्त की क्षणिका–

"विद्वज्जन की संगति विसंगति कहलाती है।
क्योंकि उनमें अहं व ईर्ष्या की गंध आती है।"

ने विद्वत्वर्ग पर चोट की। गयाप्रसाद तिवारी 'मानस' जी ने अवस्थानुरूप सुनाया–

"है तन पुरातन, संभाले हूं जतन से, पर मन तरोताजा है।"

और काव्य–संध्या के सुमेरु डॉ. रामाश्रय सविता जी ने सीढ़ी पर चढ़ते श्रमिक का शब्द चित्र उकेरा और उसके माध्यम से आज महत्वाकांक्षा की दौड़ में व्यस्त मानव का रूपक प्रस्तुत किया– **"सांस पर सांस ले, पास कर फासले,**
बांस पर है चढ़ा जा रहा आदमी।"

अंशु जैन 'अमर'
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

ग़ज़ल

– (स्व.) ब्र. सीतल प्रसाद जी

श्री जिनराज से मिलना —सकल दुविधा निवारण है
उन्हीं का ध्यान कर लेना—भवोदधि शोष कारण है।।टेक।।
न उनसा कोई जग में है—सभी उनको नमन करते
वहाँ सुख शांति अनुपम है—वही आताप टारण है।।१।।
वही एक भानु अनुपम है— सकल वस्तू प्रगट करता
सभी अज्ञान नाशक है—कुसुम भविउर प्रसारन है।।२।।
वही एक चंद्र अनुपम है— सुधा आनन्द बरसाता
नहीं छिपता कभी वह है—वही निंशि मोह वारण है।।३।।
मेरा आतम उन्हीं सम है—यही जब भाव झलकाता
परम अद्वैत अनुभव में—सुखोदधि नाम प्रचारन है।।४।।

(ब्रह्मचारी जी द्वारा वर्धा से दिनांक १४.११.२७ को लिखे एक पत्र में अंकित जो श्री नरेशचंद्र जैन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ के सौजन्य से उपलब्ध हुआ।)

शान्ति के दूत त्रिशला—पूत

(१)

त्रिशला—पूत,
अघ. के अवधूत,
शान्ति के दूत।।

(२)

हरते पीर,
सब की महावीर,
न हो अधीर।।

(३)

तन से प्यार
तो करो शाकाहार।
क्यों हो विकार।।

(४)

अहिंसा, शान्ति,
मेटती भव—भ्रान्ति।
ला नव क्रान्ति।।

(५)

वृक्षों से प्यार,
प्रदूषण पे वार।
जीवनाधार।।

(६)

तज कुरीति,
गाइये प्रेम गीत।
ले उर प्रीति।।

(७)

प्रिय हैं फूल,
घृणा के पात्र शूल,
यही है भूल।।

– दयानन्द जड़िया 'अबोध' सआदतगंज, लखनऊ—३

क्षणिकाएं

— श्री रमा कान्त जैन

चाहे जैसे चित्र खींचने और उन्हें प्रदर्शित करने का मोह मन में है समाया।
इससे होगी कितनी प्रभावना, कितनी अवमानना, इसका विवेक मन में नहीं है आया।।

* * * * * *

मित्रता की मिसाल इससे बढ़कर भला कहाँ मिलेगी
जहां खुलेआम तेंदुए से सटी गाय निरापद मिलेगी
ऐ इन्सानों, तुमसे तो ये पशु हैं अच्छे
जिनमें इन्सानियत–दोस्ती पनपी हुई आज भी मिलेगी।।

* * * * * *

भले इमानदार व्यक्ति की छवि रही हमारी।
न्यायायलों में मानी जाती थी गवाही हमारी।।
ज़माने ने करवट ली है कुछ ऐसी।
शहद–त्याग तक सीमित रह गई पहचान हमारी।।

श्रेष्ठ श्रावक

मन वचन कर्म से जो अहिंसक बना,
सत्य के पंथ पर पांव जिसने दिये।
त्याग आसक्ति, मन की कलुष–कामना,
दूसरों के लिये कार्य जिसने किये।।
जिसके दृग–द्वार अन्तःकरण के खुले
खोज लाये परम पद जो अपने लिये।
श्रेष्ठ श्रावक श्रमण साधना रत वही
'वीर' चरणों में मस्तक झुका कर जियें।।

दिव्यता देह की

सत्य, संयम, पराक्रम, अहिंसा, क्षमा,
त्याग, तप से लगन यदि लगायी नहीं।
वासना भोगवादी, कलह, कामना,
दुष्टता चित्त से यदि भगायी नहीं।।
आत्म–मंदिर में गुरु की कृपा–वर्तिका–
प्राप्तकर ज्योति जगमग जगायी नहीं।
सत्य कहता हूं 'जड़िया' तो नर देह की–
श्रेष्ठता दिव्यता जान पायी नहीं।।

— डॉ० परमानन्द जड़िया
५१, खत्री टोला,
मशकगंज, लखनऊ–१८

साहित्य सत्कार

(१) परीक्षा मुख : रचनाकार–आचार्य श्री माणिक्यनंदि जी; अनुवादक–क्षुल्लक श्री विवेकानंदसागर जी; सम्पादिका–डॉ. सूरजमुखी जैन; प्र. अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना, म.प्र.; प्र. वर्ष–२००३; पृ.–१६८; मूल्य–स्वाध्याय।

जैन दर्शन में न्याय शास्त्र का अपना विशिष्ट स्थान है तथा **परीक्षामुख** न्याय शास्त्र का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। न्याय ग्रन्थों में **परीक्षा मुख** का वही स्थान है जो सिद्धान्त ग्रन्थों में **तत्वार्थ सूत्र** का है। आचार्य माणिक्यनंदि जी (११वीं शती ई.) द्वारा संस्कृत भाषा में निबद्ध इस ग्रन्थ के मात्र २०८ सूत्रों में ही न्याय शास्त्र के समस्त प्रमेयों का परिचय प्राप्त हो जाता है। समीक्ष्य कृति में अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी क्षुल्लक श्री विवेकानंदसागर जी ने प्रत्येक सूत्र का सम्पूर्ण अर्थ अन्वय सहित सूत्रार्थ व सार्थ संस्कृत टीका तथा प्रश्नोत्तरी के माध्यम से बड़ी बोध गम्य शैली में खोल दिया हैं। इस कृति के अध्ययन और अनुशीलन से न्याय शास्त्र के अध्ययन की वृत्ति को निश्चय ही प्रोत्साहन मिलेगा। गन्थ संग्रहणीय है।

(२) आप्तमीमांसा वृत्तिः रचनाकार– आचार्य वसुनंदि सैद्धान्तिक देव; भाषा वचनिका (सार)–पं. जयचंद छाबड़ा; अनुवादिका–डॉ. सूरजमुखी जैन; प्र.–अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान बीना, म.प्र.; प्र. वर्ष–२००३; पृ. २८८; मूल्य–संस्थान की यथायोग्य सहायता।

महान तार्किक एवं परीक्षा प्रधानी आचार्य समन्तभद्र (२सरी शती विक्रम) जैन वांङ्मय में प्रथम संस्कृत कवि और प्रथम स्तुतिकार हैं। उनके सुप्रसिद्ध जिनेन्द्र भक्ति काव्य **देवागम स्तोत्र** में जिनेन्द्र भगवान की स्तुति के रूप में तर्क एवं आगम के आधार पर आप्त की मीमांसा की गई है जिसके कारण इसका अपरनाम **आप्त मीमांसा** ही अतिलोकप्रिय हो गया है। आप्त का मूल्यांकन करते हुए आचार्य श्री ने मीमांसक, सांख्य, बौद्ध तथा वैशेषिकों की मान्यताओं का परीक्षात्मक विवेचन करके तर्कपूर्ण निराकरण किया है।

आप्तमीमांसा पर संस्कृत में तीन व्याख्याएं उपलब्ध होती हैं– आचार्य अकलंकदेव कृत **अष्टशती**, आचार्य विद्यानंदकृत **अष्टसहस्री** तथा आचार्य वसुनंदी सैद्धान्तिकदेव विरचित **आप्तमीमांसा वृति** जो संक्षिप्त होते हुए भी अत्यंत सरल और स्पष्ट है। समीक्ष्य ग्रंथ में मूल मीमांसा व उस पर आचार्य वसुनंदी (१२वीं शती ई.) कृत वृत्ति को डॉ. सूरजमुखी जैन के सरल हिंदी अनुवाद सहित प्रस्तुत किया गया है। एक परिशिष्ट में पं. जयचंद छाबड़ा (१६वीं शती ई.) **कृत आप्त मीमांसा**

भाषा वचनिका तथा दूसरे में मूल स्तोत्र की कारिकाओं का अन्वयार्थ एवं कारिकार्थ देकर इस प्रकाशन को और भी उपयोगी बना दियां गया है जिसके लिए सम्पादक ब्रह्मचारी जी धन्यवाद के पात्र हैं।

समीक्ष्य प्रकाशन स्वाध्याय प्रेमियों के लिए बहुत उपयोगी है एवं संग्रहणीय है।

(३) जैन बद्री (श्रवणबेलगोला) के बाहुबली तथा दक्षिण के अन्य तीर्थ : मूल लेखक– स्व. श्री सुरेन्द्रनाथ श्रीपाल जैन, पुनः प्रस्तुति–कु. सरोजिनी सुरेन्द्र नाथ जैन; प्र.– श्री मनीष जैन, जैन पब्लिसिटी ब्यूरो, वाइल्डरनेस को.हा.सो., फ्लैट नं. ५०, एन–६/१२, एल.आई.सी. कालोनी, बोरिवली (पश्चिम) मुंबई– ४००१०३; प्रथम संस्करण– १९५३; द्वितीय सं.–२००३; पृ. ७३; मूल्य–रु. २५०/–

संस्कृत, अंग्रेजी, हिंदी व मराठी के विद्वान श्री सुरेन्द्र नाथ ने श्रवणबेलगोला में छः महीने रहकर समीक्ष्य ग्रंथ की रचना की थी।

श्रवणबेलगोला की विन्ध्यगिरि के अग्रभाग में एक ही विशाल शिला को तराश कर साधिक एक हजार वर्ष पूर्व निर्मित गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली की विश्वविख्यात ५७ फुट ऊँची भव्य मूर्ति मानव देह के अप्रतिम सौन्दर्य के साथ योगीराज की सम्पूर्ण वातावरण को शान्तिमयी बनाती वीतराग ध्यानस्थ मुद्रा को संजोए हुए हैं। समीक्ष्य ग्रंथ में विद्वान लेखक ने जैन बद्री के प्राकृतिक सौन्दर्य और मानव निर्मित कला सौन्दर्य को जिस तन्मयता से चित्रित किया है उसमें एक शोधार्थी और श्रद्धालु की भावनाएं एक साथ झिलमिलाती हैं, जैन धर्म और संस्कृति की पृष्ठभूमि पर केन्द्रित इस ग्रंथ में श्रवणबेलगोला के बाहुबली की महिमा के वर्णन की प्रमुखता के साथ ही वहाँ के तीसरी से २२वीं सदी तक निर्मित विभिन्न मंदिरों तथा दक्षिण के अन्य जैन तीर्थों का भी विस्तृत विवरण दिया गया है।

हर १२ वर्ष बाद हुए भगवान बाहुबली के महामस्तकाभिषेकोत्सवों का भी संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया गया है।

लेखक एक श्रद्धालु भक्त ही नहीं धार्मिक आडम्बरों के प्रखर आलोचक भी हैं। भगवान बाहुबली स्थल को सरकार द्वारा अपने कब्जे में लिए जाने से उनकी भावनाएं आहत हुई हैं तथा इसके लिए उन्होंने उन भट्टारकों– मठाधीशों की कड़ी आलोचना की है जो देव मूर्तियों के मालिक बन धनार्जन में लग गए हैं।

पृष्ठ ४३–४५ पर एक शिलालेख के आधार पर ईसा पूर्व २९७ में अन्तिम श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी के अपने शिष्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य व १२,००० अन्य साधुओं के संघ के साथ यहाँ आने तथा समाधिमरण करने की कथा अंकित है। **तिलोयपण्णत्ति** व अन्य आगमिक ग्रंथों के अनुसार अन्तिम श्रुत केवली भद्रबाहु

स्वामी का समाधिमरण भगवान महावीर के निर्वाण के १६२ वर्ष बाद (अर्थात् ईसा सन् से ३६५ वर्ष पूर्व) हुआ था तथा उनके साथ अवन्ति के राजा चन्द्र आए थे न कि पाटलिपुत्र के चन्द्रगुप्त मौर्य जो ई. पूर्व ३२२ में सिंहासनारुढ़ हुए थे, और **तिलोयपपणत्ति** आदि में वर्णित अन्तिम अभिषिक्त सम्राट थे जिन्होंने जिन मुनि दीक्षा ली थी। यह शिलालेख कुछ अधिक प्राचीन नहीं है। इस शिलालेख को अंकित कराने वाले ने नाम साम्य से दोनों को भ्रमवश का एक ही व्यक्ति मान लिया। समीक्ष्य ग्रंथ नयनाभिराम है, श्रवणबेलगोला तथा दक्षिणों के अन्य प्राचीन जेन तीर्थों के वर्णन का एक प्रामाणिक ग्रंथ है तथा संग्रहणीय है।

(४) जैन धर्म– आत्मा से पर्यावरण तक : ले.– श्री राजकिशोर जैन; प्र.– अंजलि प्रकाशन, ५६१ ए/१ जी, अर्जुन गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली–३२; प्र. वर्ष–२०००; पृ. ६६; मूल्य–स्वाध्याय।

समीक्ष्य कृति में विद्वान लेखक ने आत्मा के स्वरुप, पुनर्जन्म, तनावों से मुक्ति के उपाय, आदर्श समाज के निर्माण में जैनाचार्यों द्वारा उपदिष्ट इन्द्रियनिग्रह, अपरिग्रह और आत्म संयम के सिद्धान्तों की व्यवहारिक उपयोगिता तथा जैन धर्मानुसार पर्यावरण संरक्षण की सूक्ष्मताओं का विवेचन आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में किया है। अन्त में परिशिष्ट में जीवन सिद्धि हेतु स्वाध्याय की आवश्यकता पर बल दिया है।

लेखक ने अपने को वैज्ञानिक, दार्शनिक, मुक्त विचारक व प्रवचनकार बताया है, इसके अतिरिक्त पुस्तक से उनके जीवन परिचय संबंधी कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती।

पुस्तक विचारोत्तेजक है, उपयोगी एवं संग्रहणीय है।

(५) विद्वत् विमर्श : सम्पादक–प्रकाशक–डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती', मंत्री, श्री अ.भा. दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद, एल/६५, न्यू इंदिरानगर, पार्ट ए, बुरहानपुर (म.प्र.); प्रकाशन–मई २००३।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के मुख पत्र का यह दूसरा अंक है तथा अब इसे षट् मासिक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है। प्रस्तुत अंक मुख्य रूप से अक्टूबर २००२ में परिषद के बिजोलिया अतिशय क्षेत्र में सम्पन्न अधिवेशन को समर्पित है। उक्त अधिवेशन के विषय में हम पहिले ही **शोधादर्श** के पिछले अंक में लिख चुके हैं। इस अंक में कुछ ज्ञानवर्द्धक लेख भी प्रकाशित किए गए हैं जैसे श्रमण धर्म के उन्नयन में श्रावक की भूमिका, प्रविचार विषयक आ० उमास्वामी के विचार तथा आहारवृत्ति।

– अजित प्रसाद जैन

(६) **जैन धर्म की मौलिक विशेषतायें** : लेखक– डॉ. रमेशचंद्र जैन; सम्पादक–डॉ. अशोक कुमार जैन; प्र. प्राच्यविद्या अहिंसा शोध संस्थान, बुरहानपुर एवं पीयूष भारती, निकट जैन मंदिर, बिजनौर (उ.प्र.); प्रथम संस्करण १५ अप्रैल, २००३; पृ. २२०+१६; सहयोग राशि रु. ६०/–

अनेक स्वतन्त्र विशेषताओं को अपने में समाहित रखने वाले जैन धर्म के स्वतन्त्र अस्तित्व पर निरन्तर लगते रहने वाले प्रश्न चिह्नों का सप्रमाण उत्तर दिये जाने की आवश्यकता ने विद्वान लेखक को प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन हेतु प्रेरित किया और उन्होंने १०७ परिच्छेदों में परोसी गई सयुक्तिक सामग्री से अपनी प्रतिपत्ति कि जैन धर्म एक स्वतन्त्र एवं प्राचीन धर्म और संस्कृति है, सिद्ध करने का प्रयास किया है। कृति के प्रारम्भिक परिच्छेद में ही उन्होंने जैन तथा हिन्दू धर्म की १०५ विशेषताओं, अथवा यों कहें भिन्नताओं, की तुलनात्मक विवरणी प्रस्तुत कर अपनी प्रतिपत्ति की उत्थानिका प्रस्तुत कर दी और तदनन्तर जैन धर्म की प्राचीनता पर प्रकाश डाला है और अन्त में उपयोग की गई सहायक ग्रन्थ तालिका और पत्र–पत्रिकाओं की सूची दी है।

यहां यह ध्यातव्य है कि 'हिन्दू धर्म' शब्द स्वयं में भ्रमोत्पादक है। प्राचीनकाल में भारत में दो प्रकार की संस्कृतियां थीं एक प्रवृतिमार्गी और दूसरी निवृत्तिमार्गी। वेदाश्रित वैदिक संस्कृति वैदिक धर्म, ब्राह्मण धर्म, सनातन धर्म और उसकी शाखा–प्रशाखा स्वरूप शैव, वैष्णव और शाक्त धर्म आदि नामों से अभिहित हुई, और उसे ही कालान्तर में 'हिन्दू धर्म' नाम दे दिया गया। और निवृत्तिमार्गी श्रमण संस्कृति आर्हत, व्रात्य कहलाती थी जिसका प्रतिनिधित्व जैन, बौद्ध और आजीवक धर्मों ने किया। आजीवक धर्म जल्दी ही कालकवलित हो गया और बौद्ध धर्म महात्मा बुद्ध के बाद कुछ ही शताब्दियों में भारत से करीब–करीब पलायन कर गया। आज उसका पुनरुद्धार हो रहा है यह अलग बात है। किन्तु ऋषभदेव से वर्द्धमान महावीर पर्यन्त हुए २४ तीर्थंकरों द्वारा प्रणीत धर्म के अनुयायी आसेतु हिमाचल समग्र भारत में प्रारंभ से ही विद्यमान रहे हैं और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखते हुए परस्पर सौहार्द के साथ वैदिक धर्मानुयायियों के साथ इस भूभाग पर रह रहे हैं। यह अवश्य है कि वैदिक संस्कृति और जैन संस्कृति के मानने वालों में समय–समय पर अनेक बातों में परस्पर आदान–प्रदान इस प्रकार हुआ कि उनमें कुछ साम्यता देख सामान्य जन की बुद्धि उन्हें एक समझ.लेने के लिये भ्रमित हो जाती है जबकि सिद्धान्त, आर्ष ग्रन्थ पुराण, धार्मिक पर्व, तीर्थ, आचार–विचार आदि अनेक बिन्दुओं पर दोनों का पृथक्त्व स्पष्ट है।

जैन धर्म की प्राचीनता और उसके स्वतन्त्र अस्तित्व पर अब से ५२ वर्ष पूर्व सन् १९५१ में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने अपनी पुस्तक "Jainism the Oldest Living Religion" में विशद प्रकाश डाला था और अपनी "Religion and Culture of the Jains" (प्रथम संस्करण १९७५) में भी उसका विवेचन किया है। श्रीमती लता बोथरा ने भी अपनी पुस्तिका **'संस्कृति का आदि स्रोत जैनधर्म'** (**शोधादर्श**–४६ पृ. ७५–७६ पर समीक्षित) में इस पर प्रकाश डाला है। कदाचित् ये पुस्तकें विद्वान लेखक के संज्ञान में नहीं रहीं।

विवेच्य पुस्तक में प्रस्तुत सभी तर्कों और प्रमाणों से हर कोई सहमत हो यह अपेक्षा करना तो उचित नहीं, किन्तु विषय के सयुक्तिक विवेचन और परिश्रमपूर्वक प्रस्तुतीकरण हेतु विद्वान भाई डॉ. रमेशचंद्र जी साधुवाद के पात्र हैं।

(७) चन्द्रप्रभोदय (महाकाव्य) : रचयिता– श्री वीरेन्द्र प्रसाद जैन, सम्पादक– अहिंसा वाणी; प्र. अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज (एटा); पृ. २३४+२६; प्र.सं. २००३; मूल्य रु. १५१/–

विवेच्य कृति कविवर वीरेन्द्र प्रसाद जी की लेखनी से प्रसूत आठवां महाकाव्य है। इसके नायक आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की कथावस्तु उन्होंने गुणभद्राचार्य कृत **उत्तरपुराण** (८९८ ई.) के ५४वें सर्ग और वीरनन्दि कृत **चन्द्रप्रभ चरित** (११वीं शती का पूर्वार्द्ध) के धर्मोपदेश सर्ग से ग्रहण की है। वंदना से प्रारंभ इस महाकाव्य का १६ रश्मियों (सर्गों) में प्रणयन खड़ी बोली हिन्दी में हुआ है। प्रथम तीन रश्मियों में भ. चन्द्रप्रभ के पूर्व भवों का तथा चतुर्थ से षड्दशम रश्मि पर्यन्त १३ सर्गों में वर्तमान भव की गर्भ च्यवन से लेकर निर्वाण लाभ पर्यन्त जीवन यात्रा का कवि ने महाकाव्य के लक्षणों को ध्यान में रख वर्णन किया है। रसाद्रता, अलंकार योजना, प्रसाद और माधुर्य आदि गुणों तथा पद–लालित्य द्वारा तुकान्त गेय मात्रिक छन्दों में निबद्ध इस महाकाव्य को यथाशक्य सुरुचिपूर्ण बनाने का प्रयास कवि का रहा है। अनुप्रास की अनुपम छटा निम्न दोहे में दृष्टव्य है–

चन्द्राभा चन्द्रेश की, चारु चमक–चमकाय।
चन्द्र–चरण से चय चले, चन्द्रोदय–छवि छाय।।

धर्मनिष्ठ श्रावकों और काव्यरसिकों को कृति आह्लादित करेगी, ऐसा विश्वास है।

(८) मानस विनोद : रचयिता श्री शारदा प्रसाद 'भुशुण्डि; प्र. श्री अजित कुमार वर्मा, कवि कुटीर, २४६, राजेन्द्रनगर, लखनऊ– २२६००४; पृ. ६७; प्र.सं. मई २००३; मूल्य रु. १५०/–

हिन्दी में हास्य–व्यंग्य विधा के पुरोधा रहे (स्व.) भुशण्डि जी को शारदा के प्रसाद से पद्य और गद्य में समान रूप से लेखनी चलाने का वरदान प्राप्त रहा। प्रस्तुत पुस्तक समेत ११ कृतियां उनकी प्रकाशित हुई हैं और ४ अभी प्रकाशन प्रतिक्षारत हैं। लेख संग्रह 'मानस मनोरंजन' के लिये सन् १६७२ में उ.प्र. सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुके भुशुण्डि जी के मरणोपरान्त उनके सुपुत्रों द्वारा **'व्यंग्यमेव जयते'** के पश्चात तुलसीदास जी के **रामचरितमानस** के विभिन्न प्रसंगों पर आधारित उनके १४ हास्य–व्यंग्य निबन्धों का यह संकलन **'मानस विनोद'** नाम से प्रकाशित हुआ है। लेखों के नाम हैं– दोषी कौन, तुला तुला की तौल, तुलसीदास जी के नाना, किसने राम को राम बनाया, मानवता की मूर्ति, मानस में आन्दोलन की विधियां, विभीषण का कायाकल्प, विषाद शमन, सन्त महिमा, बहुमुखी प्रतिभा के प्रतीक, चौथेपन जाइहि नृप कानन, मानस का राजनीतिक प्रयोग, मानस महत्त्व और 'मानस' के गूढ़ रहस्य। प्रत्येक निबन्ध हास्य–व्यंग्य का अनोखा पुट लिये है। यह निबन्ध संकलन न केवल 'मानस' के भक्तों का अपितु सामान्य हिन्दी प्रेमियों का भी मनोरंजन करेगा इसमें सन्देह नहीं।

(६) साधना के सोपान : कथाकार डॉ. परमानन्द जड़िया; प्र. मधुलिका प्रकाशन, ४१८/१३६, गढ़ी पीर खां, लखनऊ; प्र. सं. १६६४; पृ. १६०+१६; मूल्य रु. ६०/–

साहित्य की विविध विधाओं में समान रूप से लेखनी चलाने वाले, सरस्वती के वरदपुत्र डॉ. जड़िया का **'आस्था के चरण'** और **'साकांक्षा'** के उपरान्त यह तीसरा कहानी संग्रह है जिसमें १८ कहानियां संकलित हैं। हर एक कहानी इतनी रोचक है कि पढ़ना शुरु करो तो बीच में छोड़ने को मन नहीं करता। इस संग्रह की विशेषता यह है कि यथार्थ के धरातल से लिये गये और सामयिक समस्याओं से जुड़े कथानकों और उसमें समाहित घटनाओं और पात्रों का चरित्र चित्रण इस कुशलता से किया गया है कि हर कहानी को पूरा पढ़ लेने पर मन में सुखानुभूति होती है। सभी कहानियां प्रेरणास्पद हैं। इसके लिये कुशल कहानीकार जड़िया जी साधुवाद के पात्र हैं।

(१०) इन्द्रधनुष के रंग : रचनाकार श्री दयानंद जड़िया 'अबोध'; प्र. मधुलिका प्रकाशन–संस्थान, ४१८/१३६, गढ़ी पीर खां, लखनऊ; २२६००३; प्रथमावृत्ति १६६६; पृ. ४७+४; मूल्य रु. २५/–

आज जब पाठकों के पास अपनी अन्य व्यस्तताओं के कारण महाकाव्य, खण्ड–काव्य, उपन्यास, नाटक या लम्बी कहानियां पढ़ने के लिये समयाभाव होता

जा रहा है क्षणिकाएं, लघुकथाएं, शब्द–चित्र जैसी लघु कृतियां पाठकों की मानसिक क्षुधा–तृप्ति के लिये साहित्य–संसार में जन्म लेने लगी हैं। इन लघुकृतियों का सृजन, अर्थात् चंद शब्दों में अपनी बात पाठकों तक पहुंचाना, सरल नहीं होता। इसमें काफी कुशलता की अपेक्षा होती है। साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में लेखनी चला चुके बन्धुवर दयानन्द जड़िया जी ने लघु कथाओं का भी प्रणयन किया। प्रस्तुत कृति उनकी १४ लघु कथाओं का संकलन है जिसमें भारतीय जनजीवन में व्याप्त विसंगतियों पर व्यंग्य किया गया है। लघु आकार के इन शब्द–चित्रों में उन्होंने स्वार्थपरता, कवियों की छपास, आरक्षण, फैशनपरस्ती, दहेज धनलोलुपता, नेतागिरी, पुलिस कर्मियों की स्वेच्छाचारिता, सरकारी आंकड़े, ऊंच–नीच भावना और संवेदनहीनता जैसे विषयों को पात्रानुरूप सरल–सुबोध भाषा में रूपायित कर इन्द्रधनुषी रंग बिखेरे हैं। एक बार पढ़ना प्रारंभ किया तो पूरी करके ही उठने का मन हुआ। 'अबोध' जी इन शब्द–चित्रों को प्रस्तुत करने के लिये साधुवाद के पात्र हैं।

(११) घरवाली : रचयिता आचार्य दयानंद जड़िया 'अबोध'; प्र. मधुलिका प्रकाशन, १८६/५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ–१८; प्रथमावृत्ति १९९९; पृ. ६०; मूल्य रु. ३०/–

यह घरवाली उपर्युक्त 'अबोध' जी की ही है जो अपने आवरण में ३१ हास्य कविताएं पाठकों का मन गुदगुदाने के लिये संजोये हुए है। कवि ने कामना की है–

कामना अपनी यही नित हर्ष की लतिका खिलें
पाठकों की जिन्दगी में संग घरवाली रहे।।

और उसकी जयकार बोल अपनी भाव–भागीरथी अविरल बहाई है। हास्य–व्यंग्य से सराबोर इस काव्यकृति से पाठक बोर भला कैसे हो सकते हैं जब वे कवि को घरवाली को प्रणाम करते हुए पाते हैं–

जिसकी कृपा कटाक्ष से, भोजन मिले ललाम।
उस घरवाली को करूं, प्रातः नित्य प्रणाम।।

– रमा कान्त जैन

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.
प्रगति प्रतिवेदन २००२-२००३

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र. का गठन सन् १६७६ ई. में भगवान महावीर स्वामी का २५००वां निर्वाण महोत्सव वर्ष मनाने के लिये राज्य सरकार द्वारा गठित श्री महावीर निर्वाण समिति, उ. प्र. की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में जैन धर्म की सभी आम्नायों के महानुभावों के सहयोग से किया गया था तथा गठन के तुरन्त बाद ही उसे सन् १८६० के रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया था जिसका नियमानुसार नवीकरण कराया जाता रहा है। वर्तमान नवीकरण मार्च २००६ तक का है। समिति की सभी प्रवृत्तियों का प्रारम्भ से ही सुचारु रूप से संचालन होता रहा है। समिति का पिछला प्रगति प्रतिवेदन (वर्ष २००१–२००२) शोधादर्श–४८ (नवम्बर २००२) के पृष्ठ ५१–५४ पर प्रकाशित है। अब यहां वर्ष २००२–२००३ का प्रगति प्रतिवेदन प्रस्तुत है।

विगत वर्ष (१ अप्रैल २००२ से ३१ मार्च २००३) में भी समिति की सभी प्रवृत्तियों का सुचारु सम्पादन किया गया। संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है –

(१) तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय –

पुस्तकालय की स्थापना वर्ष १६७६ की श्रुत पंचमी को श्री मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला, चारबाग, लखनऊ में, धर्मशाला ट्रस्ट के सौजन्य से उपलब्ध कराए गए एक बड़े कक्ष में की गई थी तथा इसका विधिवत उद्घाटन अक्टूबर १६७६ में तत्कालीन उच्च शिक्षा मंत्री माननीय डॉ. रामजीलाल सहायक के कर कमलों से कराया गया था। दिनांक १ अप्रैल, २००१ से पुस्तकालय को (जो पहिले धर्मशाला के ऊपरी तल पर श्री मंदिर जी के अन्दर के एक कक्ष में चल रहा था) धर्मशाला ट्रस्ट द्वारा भूतल पर विशेष रूप से निर्मित कराए गए तथा किराए पर उपलब्ध कराए गए एक बड़े कक्ष में स्थानान्तरित कर दिया गया है तथा संलग्न छोटे कक्ष में धार्मिक पत्र–पत्रिकाओं का वाचनालय स्थापित कर दिया गया है। तबसे पुस्तकालय– वाचनालय की लोकप्रियता में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय के अपने सदस्यों की संख्या जो पूर्व में केवल १२ थीं, २००१–२००२ में बढ़कर ३३ तथा २००२–२००३ में ५० हो गई। और अब तो चारबाग ही नहीं, आसपास की कालोनियों में भी कदाचित् ही कोई जैन परिवार बचा होगा जो पुस्तकालय का सदस्य न बना हो। अनेक अजैन

बन्धुओं ने भी पुस्तकालय की सदस्यता ग्रहण की है। पुस्तकालय की प्रगति से प्रसन्न होकर उसके संवर्द्धन के लिए विशेष सहायता प्रदान करने वालों में भी एक अजैन बन्धु डॉ. आर. के. अग्रवाल (सी–२४५, साउथ सिटी, लखनऊ) का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने वर्ष २००१–२००२ में इस हेतु रु. १००१/– की सहायता प्रदान की थी। इस वर्ष (२००२–२००३) में डॉ. एस. के. जैन (मॉडल हाउस, लखनऊ) ने कतिपय शीर्ष साहित्यकारों की अति लोकप्रिय कृतियों के क्रय के लिए पुस्तकालय को रु. ४,०००/– की विशेष सहायता प्रदान की है जिसके लिए हम डाक्टर साहब के आभारी हैं।

पुस्तकालय में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति के अध्ययन हेतु जैन धर्म की सभी आम्नायों का साहित्य तथा शोधार्थियों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिए अन्य भारतीय धर्मों, दर्शन व संस्कृति से संबंधित महत्वपूर्ण साहित्य रखने का प्रयास किया जाता है। अपने विशिष्ट संकलन के लिए इन विषयों के शोधार्थी पाठकों में हमारा पुस्तकालय विशेष लोकप्रिय है तथा लखनऊ व कानपुर विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध अनेक शोध छात्र इससे लाभ उठाते हैं। साधारण रुचि के पाठकों के लिए लौकिक व सामान्य ज्ञानवर्द्धक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में संग्रहीत है।

विगत वर्ष पुस्तकालय में रु. ५०,४३७/– मूल्य की ५८० पुस्तकों की वृद्धि हुई जिनमें रु. ७,६००/– मूल्य के १४४ धार्मिक ग्रंथ हैं। धर्म साहित्य के अतिरिक्त अन्य अधिकांश पुस्तकें राजाराम मोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान, कोलकाता तथा प्रदेश के शिक्षा विभाग (पुस्तकालय कोष्ठक) के पुस्तक अनुदान के रूप में (रु. ३६,०००/– मूल्य की ३२२ पुस्तकें) तथा कतिपय दातारों से भेंट स्वरूप ही प्राप्त हुई हैं। शिक्षा विभाग (पु को.) से रु. १,२५०/– का अनावर्तक अनुदान भी प्राप्त हुआ। साहित्य क्रय पर इस वर्ष २००२–०३ में रु. १,०१३/– का व्यय हुआ। ३१ मार्च २००३ को पुस्तकालय में कुल पुस्तकों की संख्या ६३७३ रु. २,८६,६१७/– मूल्य की थी।

शोध पुस्तकालय के वाचनालय में ६५–७० धार्मिक पत्र–पत्रिकाएं (साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रयमासिक चातुर्मासिक व षट्मासिक) आती हैं जिनमें से अधिकांश **शोधादर्श** के परिवर्तन में प्राप्त होती हैं तथा शेष की समिति आजीवन सदस्य है। पुस्तकालय–वाचनालय से प्रतिदिन ४०–४५ पाठक लाभ उठाते हैं। पुस्तकालय–वाचनालय का समय प्रातः ८.०० से अपराह्न २.०० बज़े का है। सोमवार को अवकाश रखा जाता है।

(२) शोधादर्श –

समिति की चातुर्मासिक शोध पत्रिका '**शोधादर्श**' का प्रकाशन फरवरी १९८६ में प्रथम अंक के प्रकाशन से प्रारंभ किया गया था। इसके आद्य सम्पादक डॉ. ज्योति प्रसाद जैन इतिहास मनीषी थे किन्तु उनके जीवन काल में केवल ६ अंक ही (फरवरी १९८८ तक के) निकल पाए। जून १९८८ में उनके स्वर्गवास के उपरांत अंक ७ से प्रधान सम्पादक का उत्तरदायित्व डॉ. शशिकान्त बड़ी योग्यता से निभाते रहे तथा अंक ३० (नवम्बर १९९६) से प्रधान सम्पादक का कार्यभार हम ही सम्हाल रहे हैं। पत्रिका की लोकप्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है तथा आज यह पत्रिका देश की उच्च स्तरीय धार्मिक शोध पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। समय से प्रकाशित वर्ष के तीनों अंकों (४६–४७–४८) के २५८ पृष्ठों में प्रकाशित उपयोगी पठनीय सामग्री की प्रबुद्ध वर्ग द्वारा व्यापक सराहना हुई है। पत्रिका के सम्पादन, प्रेषण आदि में किए गए बहुमूल्य योगदान के लिए मैं अपने सहयोगी सम्पादक श्री रमाकान्त जी का विशेष आभारी हूं। इस वर्ष **शोधादर्श** के प्रकाशन पर कुल व्यय रु. २७,०६४/– हुआ।

(३) तीर्थंकर छात्र सहायता कोष –

इस वर्ष ४२ विपन्न, पर धर्मनिष्ठ, छात्र–छात्राओं को अध्ययन जारी रखने हेतु आंशिक सहायता प्रदान करने पर रु. १४,८७६/– का व्यय किया गया जो पिछले वर्ष की अपेक्षा रु. ४७६६.५० अधिक था। प्रबंध समिति के माननीय सदस्य श्री महेन्द्र प्रसाद जी ने इस कोष का भार सम्हालने में बहुमूल्य योगदान किया जिसके लिए मैं उनका विशेष आभारी हूँ।

(४) महावीर जन कल्याण निधि –

इस वर्ष तीन असहाय धर्मनिष्ठ महिलाओं को वस्त्र–औषधि हेतु सहायता प्रदान करने पर रु. ३,१५०/– का व्यय किया गया। हमारे उपमंत्री श्री रमाकांत जी ने निधि का भार भी सम्हालने में बहुमूल्य योगदान किया।

समिति के लेखे का आडिट इस वर्ष भी सर्वश्री ए. जिन्दल चार्टर्ड एकाउंटेंट्स द्वारा किया गया। पुस्तक अनुदानों के अतिरिक्त कुल प्राप्तियां रु. १,०५,३५५.४४ पै. तथा कुल व्यय (पुस्तकालय कक्ष किराया सहित) रु. ७४,६७३.७५ पैसा हुआ। प्राप्ति–व्यय की विवरण तालिका संलग्न है।

चिर वियोग– ११ नवम्बर, २००२ को हमारी प्रबंध समिति के माननीय सदस्य समाजसेवी, धर्मपरायण ५५ वर्षीय श्री सुरेन्द्रनाथ जैन का चौक, लखनऊ में हृदयाघात से आकस्मिक निधन हो गया।

१७ दिसम्बर, २००२ को हमारी समिति के माननीय सदस्य सक्रिय समाजसेवी ७३ वर्षीय श्री जयनारायण "काकाजी" (मेरठ) का हृदयाघात से आकस्मिक स्वर्गवास हो गया। श्री जयनारायण जी उत्तरांचल दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी व उत्तरांचल दिगम्बर जैन महासमिति के हमारे व स्व. श्री सुकमाल चंद जी के साथ संस्थापकों में से थे तथा वर्षों इनके महामंत्री रहे।

समिति के अध्यक्ष आदरणीय श्री लूणकरण जी नाहर का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन हमें निरन्तर मिलता रहा जिसके लिए हम उनके विशेष आभारी हैं। उपाध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जी एवं श्री राजकुमार जी, कोषाध्यक्ष श्री बिजयलाल जी, उपमंत्री श्री नरेश चंद्र जी व श्री रमाकान्त जी एवं प्रबंध समिति के सभी माननीय सदस्यों के सौहार्दपूर्ण सहयोग के लिए हम आभारी हैं। श्री रमाकान्त जी ने तो **शोधादर्श** के सम्पादन सहित समिति के सभी कार्यों के निष्पादन में अपने सक्रिय सहयोग से हमारा हाथ बंटाया।

– अजित प्रसाद जैन
महामंत्री

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र. की नव निर्वाचित प्रबंध समिति

२० जुलाई, २००३ को समिति की साधारण सभा की बैठक में समिति के पदाधिकारियों एवं कार्यकारिणी सदस्यों का निर्वाचन आगामी तीन वर्ष के लिये सर्वसम्मति से निम्नवत सम्पन्न हुआ – अध्यक्ष– श्री लूणकरण नाहर जैन, उपाध्यक्ष– श्री कन्हैया लाल जैन और श्री नरेशचन्द्र जैन, महामंत्री– श्री अजित प्रसाद जैन, संयुक्त मंत्री– श्री रमा कान्त जैन, उपमंत्री– श्री महेन्द्र प्रसाद जैन व श्री रोशनलाल नाहर, कोषाध्यक्ष– श्री बिजयलाल जैन, सदस्य प्रबन्ध समिति– डॉ. शशिकांत, श्री कैलाश भूषण जिन्दल, डॉ. पूर्णचंद्र जैन, श्री नेमिचंद्र जैन, श्री संदीपकांत जैन, श्री रोहित कुमार जैन, श्री नलिनकान्त जैन, श्री धनेन्द्र कुमार जैन, श्री आदित्य जैन, श्री दीपक जैन, डॉ. विनय कुमार जैन और श्री अजय जैन कागजी।

TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U. P.

RECEIPTS AND PAYMENTS ACCOUNT FOR THE YEAR ENDING 31st MARCH, 2003

RECEIPTS		Rs. P.
To Balance b/d :		
F.D.Rs	15,10,195.00	
Saving Bank	15,604.96	
Cash in Hand	6,599.11	15,32,399.07
Membership Fee of Samiti		2,604.00
Magazine Subscription		3,221.00
Magazine Donation		4,057.00
Research Library :		
Security Deposit	1,700.00	
Subdcription	1,300.00	
Donation	4,171.00	
from Govt. Grant	1,250.00	8,421.00
Miscellaneous Receipts		1,639.00
Interest on F.D.R.s		65,684.44
Savings Bank interest		1,479.00
F.D.R. Maturity Interest		18,250.00
		16,37,754. 51

PAYMENTS		Rs. P.
Research Library Expenses :		
Salary Libr. Asstt.	14,400.00	
Salary Cleaner	740.00	
Contingencies	387.00	
Stationery & Prtg.	1,048.50	
Postage	617.25	
Books	1,013.00	18,205.75
Shodhadarsh Expenses :		
Printing & Paper	23,350.00	
Postage	3,714.00	27,064.00
M. J. Kalyan-Nidhi Expenses		3,150.00
T. C. S Kosh Scholarship Expenses		14,879.00
I.T. Counsel Fee		675.00
Audit Fee		1,100.00
Balance c/d :		
F.D.R.s	15,28,445.00	
S. B. Account	37,690.40	
Cash in Hand	6,545.36	15,72,680.76
		16,37,754. 51

A. P. Jain
General Secretary
Tirthankar Mahavir Smriti
Kendra Samiti, U. P.

Compiled from information and explanations furnished.

Lucknow, July 26, 2003

Alok Jindal
For A. Jindal & Co.
Chartered Accountants

समाचार विमर्श

— श्री अजित प्रसाद जैन

स्थानकवासी श्रमण संघ में फाड़—

अब से ५१ वर्ष पूर्व अक्षय तृतीया के पावन दिन स्थानकवासी श्वेताम्बर जैन श्रमण संघ में एक अभूतपूर्व क्रांति हुई थी। सादड़ी (राजस्थान) में हो रहे श्रमणों के एक महासम्मेलन में विभिन्न सम्प्रदायों के २२ आचार्यों ने स्वेच्छा से अपने आचार्य पद संघ को समर्पित कर पूज्य आचार्य श्री आत्माराम जी को अपना आचार्य सम्राट घोषित कर उनके आज्ञानुवर्ती रहना स्वीकार किया। इन विभिन्न सम्प्रदायों के साधुओं का एक ही आचार्य के आज्ञानुवर्ती हो जाने से एक ही आचार्य की छत्र छाया में एक बृहत् स्थानकवासी समाज का निर्माण हुआ जिसके साधु—साध्वी तथा श्रावक पूरे देश में फैले हुए हैं। यह स्थानकवासी समाज की स्वर्णिम घड़ी थी। यद्यपि अभी भी स्थानकवासी आम्नाय में ६ और आचार्य भगवन्त अपने—अपने श्रावक समुदायों के साथ विद्यमान हैं, पर उनका कार्य एवं प्रभाव क्षेत्र राजस्थान, गुजरात एवं मुंबई मे ही सीमित है।

इस अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज के श्रमण संघ में अब तक निम्नलिखित संत आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो चुके हैं—

१. प्रथम आचार्य सम्राट श्री आत्माराम जी (१९५२—१९६५)

२. द्वितीय आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी (१९६५—१९९२)

३. तृतीय आचार्य सम्राट श्री देवेन्द्र मुनि जी (१९९२—१९९९)

४. चतुर्थ आचार्य सम्राट श्री डॉ. शिव मुनि जी (१९९९ से)

समग्र जैन चातुर्मास सूची २००२ के अनुसार आचार्य सम्राट के आज्ञानुवर्ती श्रमणों की संख्या ५५६ संत तथा २,७७२ सतियां हैं। सम्पूर्ण देश में फैले इस श्रमण संघ में धार्मिक अनुशासन सुनिश्चित करने के लिए एक विशद श्रमण संघीय समाचारी का भी निर्माण किया गया तथा महामंत्री, प्रवर्तक, उप प्रवर्तक, सलाहकार आदि के पदों का भी पर्याप्त संख्या में सृजन किया गया।

५१ वर्ष बाद अक्षय तृतीया के ही पावन दिन इस वर्ष स्थानकवासी श्रमण संघ में पुनः एक अभूतपूर्व पर दुखद घटना घटी।

दिनांक ४ मई को आचार्य सम्राट श्री शिवमुनि जी ने अपने एक आदेश द्वारा संघ के कई वरिष्ठ पदाधिकारी एवं अन्य संतों को घोर अनुशासनहीनता के लिए

उनके पदों से हटा दिया तथा (अपने आज्ञानुवर्ती) श्रमण संघ से भी अलग कर दिया।

इसके पूर्व इन वरिष्ठ संतों ने २८.४.०३ को व उसके बाद आचार्य श्री को पत्र लिखकर उन पर आरोप लगाया था कि स्थानकवासी परम्परा के प्रतिकूल उनके ध्यान शिविरों में सचित्त नमक का प्रयोग तथा ध्यानार्थियों हेतु सचित्त फलों का उपयोग होता है तथा उनके प्रवचन आगम और स्थानकवासी परम्परा के प्रतिकूल होते हैं। उन्होंने यह भी लिखा था कि जब तक इन आरोपों का समुचित समाधान नहीं हो जाता, **वे आचार्य श्री की आज्ञा शिरोधार्य नहीं करेंगे**।

"आज्ञा शिरोधार्य नहीं करेंगे", का सीधा अर्थ है कि हम आपको आचार्य नहीं मानेंगे। जब उन्हें आचार्य श्री का अनुशासन ही स्वीकार नहीं रहा तो कदाचित् आचार्य श्री के लिए भी ४ मई को आदेश जारी करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रहा होगा, तथापि उनकी शैली में जल्दबाजी व अहम् तो कदाचित् दृष्टिगोचर होता ही है।

आचार्य शिवमुनि जी द्वारा निष्कासन के आदेश पर प्रतिक्रिया स्वरूप इन संतों ने १० मई को एक परिपत्र जारी कर श्री शिवमुनि जी को ही आचार्य पद से हटा दिया तथा श्रमण संघ के नए आचार्य के रूप में 'ज्ञान क्रिया निष्ठ आगम निष्णात क्षमा श्रेष्ठ उमेश मुनि जी की तथा युवाचार्य पद पर उपाध्याय श्री विशाल मुनि जी की घोषणा कर दी। तथापि अनेक श्रमणों व श्रावक संघों ने आचार्य श्री शिव मुनि जी में पूर्ववत अपनी निष्ठा भी व्यक्त की है। इस प्रकार अब स्थिति यह है कि स्थानकवासी श्रमण संघ में दो आचार्य हो गए हैं यद्यपि समाज के प्रबुद्ध जनों व श्रमणों द्वारा इस विषम स्थिति से उबरने के प्रयास जारी हैं।

आचार्य श्री शिवमुनि जी पर विरोधी वरिष्ठ संतों ने स्थानकवासी परम्परा के विपरीत क्रियाओं एवं श्रद्धा प्ररूपणा में शिथिलता के जो आरोप लगाए हैं, वे इतने सतही हैं कि उनको ढाल बनाकर तीव्र गति से इतने बड़े कदम उठाए जाना बड़ा ही विचित्र लगता है। आचार्य शिव मुनि जी इन वरिष्ठ संतों के लिए कोई नए तो थे नहीं, वे पिछले चार वर्षों से आचार्य पद पर प्रतिष्ठित चले आ रहे हैं तथा इसके पूर्व द्वितीय आचार्य आनन्द ऋषि जी के काल से युवाचार्य के पद पर प्रतिष्ठित चले आ रहे थे। हो सकता है कि वे कुछ उदारवादी दृष्टिकोण रखते हों और समाचारी की कुछ परम्पराओं को समयानुकूल न मान कर उनमें कुछ परिवर्तन कर रहे हों जो हर परम्परागत क्रिया को अपरिवर्तनीय मानने के पक्षधर कट्टरपंथी साधुओं को रास न आई हो।

'महावीर मिशन' के विद्वान सम्पादक प्रो. रतन जैन के अनुसार यह विचित्र स्थिति है कि आचार्य श्री द्वारा आयोजित जिन ध्यान शिविरों के कार्यक्रमों को विरोध का मुख्य मुद्दा बनाया गया है वे तो वर्षों से चल रहे हैं तथा दिल्ली में सम्पन्न चादर समर्पण समारोह जिसमें प्रायः सभी पदाधिकारी संत व अन्य अनेक साधु–साध्वी तथा देश के कोने–कोने से पधारे हजारों श्रावक–श्राविकाएं सम्मिलित हुए थे, उस समय भी ध्यान के ये ही कार्यक्रम थे और उनमें वरिष्ठ संत डॉ. विशाल मुनि जी सहित सैकड़ों साधु–साध्वियों ने भाग लिया था। उस समय सम्पन्न हुई साधु–साध्वियों की विचार संगोष्ठी में सर्वश्री हेमचंद जी म., सुमन मुनि जी, सुमति मुनि जी, विशाल मुनि जी व अमर मुनि जी सहित सैकड़ों साधु–साध्वियों ने आचार्य श्री की निश्राय में चिन्तन किया था और आचार्य श्री में अपनी एकजुटता व निष्ठा व्यक्त की थीं। उनका कहना है कि यह तो ऐसा ही हुआ कि पिता श्री से मतभेद होने पर उन्हें पिता मानने से ही इन्कार कर देना। उनका मानना है कि इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का मुख्य कारण अ. भा. स्थानकवासी कांफ्रेंस के चुनाव का विवाद है।

(महावीर मिशन–अप्रैल–मई २००३)

हम आशा करते हैं कि स्थानकवासी समाज का प्रबुद्ध वर्ग अन्ततः इन सभी विवादों को सुलझाने में सफल होगा तथा समाज दो फाड़ होने की स्थिति से अपने को उबार लेगा।

पार्श्व ज्योति का घूमता आइना–

पार्श्व ज्योति (मासिक) पत्रिका के मई २००३ के अंक में उसके विद्वान सम्पादक जी ने अपने 'घूमता आइना' स्तम्भ में शोधादर्श सहित तीन पत्रिकाओं को अपना कोप भाजन बनाते हुए हमारी पत्रिकारिता पर ही प्रश्न चिह्न लगाया है। सम्पादक जी फरमाते हैं–

"– – – हमारी इन पत्रिकाओं के सम्पादक–अग्रजों को क्या हो गया है जो निरन्तर कुछ न कुछ अनर्गल छाप कर न जाने समाज को किस पाप की सजा दे रहे हैं या देना चाहते हैं—— शोधादर्श वालों को भड़काऊ लेखन और टिप्पणी करने/कराने की आदत सी पड़ गई है। इसी के ४६ अंक में आचार्य सन्मतिसागर, आचार्य पुष्पदन्तसागर, मुनि श्री सौरभसागर पर अनर्गल विचार छापकर मुनिधर्म को कलंकित करने का प्रयास किया गया है—– ।"

हम पार्श्व ज्योति के सम्पादक जी के इस नितान्त अनर्गल प्रलाप पर चकित हैं। उन्होंने हमारे तथाकथित भड़काऊ लेखन या टिप्पणी या तथाकथित अनर्गल

विचारों के किसी भी आपत्तिजनक अंश को उद्धृत नहीं किया जिनमें उनकी दृष्टि में मुनि धर्म को कलंकित करने का प्रयास किया गया है। वर्ना हम उनके विषय में अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते या अपनी भूल स्वीकार कर लेते।

हम सभी पूज्य आचार्यों, मुनिराजों के प्रति विनय भाव रखते हैं। साथ ही यदि किसी की चर्या, उपदेश में कुछ आगम या कुन्दकुन्दाम्नाय विरुद्ध दृष्टिगोचर हो तो शिष्ट भाषा में समाज के प्रबुद्ध वर्ग का ध्यान उस ओर आकर्षित करना भी अपना कर्तव्य समझते हैं। हमें भीत मीत चाटुकारिता की पत्रकारिता रुचिकर नहीं है जिसे ही कदाचित् पार्श्व ज्योति के सम्पादक जी श्रेष्ठ पत्रकारिता का मापदंड मानते हैं।

इन सम्पादक जी को सर्वाधिक रोष 'पाठकों के पत्र' स्तम्भ के अन्तर्गत जस्टिस एम. एल. जैन के पत्र के छापे जाने पर है तथा उन्होंने प्रश्न किया है कि यद्यपि पत्र में व्यक्त किए गए विचार लेखक के हैं पर क्या ऐसी ही प्रतिक्रिया वे हम पर देते तो क्या हम प्रकाशित करते? हम बताना चाहेंगे कि हम अपने प्रबुद्ध पाठकों के पत्र., खट्टी-मीठी प्रतिक्रिया के, बिना किसी भेदभाव के, प्रकाशित करते रहे हैं तथा इस अंक में भी प्रकाशित किए हैं। ८१ वर्षीय वयोवृद्ध जस्टिस जैन हमारे एक प्रबुद्ध पाठक हैं।

उनके पत्र पर एक पाठक की ऐसी ही प्रतिक्रिया पर हमने इसी अंक में "पाठकों के पत्र" स्तम्भ में अपनी टिप्पणी में उनके पत्र के विषय में कुछ स्पष्टीकरण दिए हैं जिनकी हम यहां पुनरावृत्ति करना आवश्यक नहीं समझते।

शोधादर्श की शैली को, उसमें प्रकाशित लेखन सामग्री को हमारे प्रबुद्ध पाठक (जिनमें अनेक देश के विभिन्न अंचलों के प्रसिद्ध विद्वान हैं) कितना पसन्द करते हैं यह तो पाठकों के पत्रों में व्यक्त की गई प्रतिक्रियाओं से स्वतः स्पष्ट है।

ब्राह्मण आर्यों ने नष्ट की थी सिंधु सभ्यता

नयी दिल्ली, १७ जुलाई। हड़प्पा लिपि को समझने का दावा करने वाले एक स्वयंभू शोधकर्ता ने आज दावा किया कि सिंधु घाटी सभ्यता के विनाश के लिए ब्राह्मण आर्य जिम्मेदार हैं।

स्टेट बैंक आफ इंडिया में काम करने वाले धनपत सिंह ढाणिया ने यहां अपनी पुस्तक **'हड़प्पा मिस्ट्री डिसाईफर्ड'** के विमोचन के अवसर पर एक संवाददाता सम्मेलन में कहा कि हड़प्पा खुदाई स्थल पर पुरातत्वविदों द्वारा खोजी गई मोहरों और टिकटों के आधार पर वह यह साबित कर पाये हैं कि सिंधु घाटी की सभ्यता को ब्राह्मण आर्यों ने नष्ट किया था। उन्होंने कहा कि भारतीय

पुरातत्व के जनक सर मार्तिमर व्हीलर ने सबसे पहले २०वीं सदी के शुरूआत में यह दावा किया था लेकिन बहुत लोगों ने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया। ढाणिया ने दावा किया है कि टिकटों और मोहरों के आधार पर वह यह साबित कर पाये हैं कि सर व्हीलर सही थे जिनका कहना था कि ब्राह्मणों और कृषकों में संघर्ष के चलते सिंधु घाटी सभ्यता का विनाश हुआ। तीन साल पहले भी ढाणिया ने दावा किया था कि उन्होंने हड़प्पा लिपि को पढ़ लिया है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने उनके इस दावे को स्वीकार नहीं किया था और कहा था कि सत्यता की जांच के लिए एक ज्यूरी गठित की जाएगी। ढाणिया ने बताया कि इस ज्यूरी का गठन पुरातत्व विभाग ने आज तक नहीं किया है और इसलिए उन्होंने सभी तथ्य एक पुस्तक के रूप मे प्रकाशित किए हैं।

– (दैनिक जागरण, लखनऊ, १८.७.०३ से साभार)

(मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के पुरावशेषों के गहन अध्येता अनेक विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि प्राचीन सिन्धु सभ्यता देश की आदि संस्कृति–श्रमण संस्कृति से प्रभावित थी तथा वैदिक याज्ञिक हिंसा (पशुमेध, नरमेध यज्ञों) की कट्टर विरोधी थी। कुछ विद्वानों ने मोहनजोदड़ो से प्राप्त कुछ सीलों आदि पर भ. ऋषभदेव व भरत चक्रवर्ती से संबंधित प्रसंगों को भी चिन्हित तक किया है। – प्रधान सम्पादक)

भूल सुधार

शोधादर्श– ४८ (नवम्बर २००२) में पृष्ठ ३३ पर 'भक्तामर स्तोत्र' आलेख में प्रथम पंक्ति में 'उत्सर्पिणी' के स्थान पर 'अवसर्पिणी' कृपया पढ़ा जाय।

शोधादर्श– ४६ (मार्च २००३) में पृष्ठ १४ पर अंकित निम्न वाक्य "इनमें भी चतुर्थ काल की अवधि **४६ हजार** वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष होती है तथा पांचवे व छठे काल की अवधि मात्र २३, २३ हजार वर्ष" में ४६ हजार के स्थान पर **४२ हजार वर्ष** और २३, २३ हजार के स्थान पर **२१, २१, हजार वर्ष** कृपया पढ़ा जाय। मुद्रण–त्रुटि के लिये खेद है।

– सम्पादक

समाचार विविधा

श्रमण परम्परा विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी–

पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी एवं उत्तर प्रदेश जैन विधा शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में पार्श्वनाथ विद्यापीठ में दिनांक २६–२८ अप्रैल 'महावीर एवं गौतम बुद्ध पर्यन्त श्रमण परम्परा' पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। ५० विद्वानों ने अपने शोध–पत्र भेजे। नौ शैक्षणिक सत्र हुए जिनमें ४३ शोध–पत्रों का वाचन हुआ। समापन सत्र में संगोष्ठी के अध्यक्ष प्रो. सागरमल जैन और मुख्य अतिथि प्रो. अंगने लाल का सम्बोधन हुआ तथा पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक प्रो. महेश्वरी प्रसाद ने पठित निबन्धों का सार संक्षेप प्रस्तुत किया।

हेल्सिंकी में विश्व संस्कृत सम्मेलन–

हेल्सिंकी में हुए १२ वे विश्व संस्कृत सम्मेलन में जैन विद्या खण्ड में जैन सेन्टर, रीवां के डॉ. एन. एल. जैन ने अपने दो शोध–पत्र – 'अनेकान्तवाद एवं संघर्ष समाधान' तथा 'जैनों का बैज्ञानिक साहित्य' और जैनविश्व भारती, लाडनूं के रजिस्ट्रार डॉ. जे. आर. भट्टाचार्य ने शोध–पत्र 'जैन ग्रन्थों में नारी' का वाचन किया।

पश्चिम की मांसाहार से तौबा–

दुनिया में शाकाहार भोजन करने वालों की संख्या बढ़ रही है जबकि भारत समेत विकासशील देशों में इसका उल्टा हो रहा है। मांसाहार के कारण भारत में हृदय रोग की दर सबसे अधिक है और अगर यही रफ्तार रही तो २०२० तक यह इस दिशा में सबसे आगे निकल जायेगा। रिपोर्ट के अनुसार दुनियाभर में लाखों लोगों ने मांस उत्पादन के साथ जुड़ी क्रूरता, मांसाहार तथा कुछ बीमारियों के बीच बढ़ते रिश्ते और पर्यावरण पर मांस उत्पादन प्रभाव को समझते हुए शाकाहारी जीवन अपना लिया है। पशु हितों से जुड़ी संस्था पेटा के अनुसार यूरोप में पशु फार्मों को प्रतिकूल प्रभावों के कारण बंद किया जा रहा है जबकि भारत में इसका प्रसार बढ़ा है। व्हाइट हाउस में शाकाहारी बर्गर्स परोसा जाना और ब्रिटेन में रोस्ट बीफ के स्थान पर तरकारी करी परोसे जाने से साफ जाहिर होता है कि अमेरिका में ही हर साल दस लाख से ज्यादा लोग शाकाहार की दिशा में कदम रख रहे हैं।

(दैनिक जागरण, लखनऊ, १३ मार्च, २००३ से साभार)

एक अरब के दान की घोषणा–

मुम्बई के सुप्रसिद्ध उद्योगपति एवं समाज सेवी श्री दीपचंद जी गार्डी ने राजकोट में एक विशेष सम्मान समारोह के अवसर पर गुजरात के अमरेली तथा जूनागढ़ जिले में मेडिकल कालेज की स्थापना के लिए एक अरब रुपये के दान की घोषणा की। श्री गार्डी जी शिक्षा व चिकित्सा के लिए उदारतापूर्वक दान देने के लिए विख्यात हैं।

नागार्जुन यूनीवर्सिटी में जैन म्यूजियम–

आचार्य श्री विजय नित्यानंदसूरीश्वर म. की प्रेरणा से नागार्जुन विश्वविद्यालय के कुलपति श्री वेणुगोपाल रेड्डी ने आंध्र प्रदेश में विभिन्न क्षेत्रों में उत्खनन में प्राप्त प्राचीन जैन तीर्थंकर भगवंतों की प्रतिमाओं की सार–संभाल और सुरक्षा हेतु एक म्यूजियम बनाने और उस हेतु भूमि देने की घोषणा की।

जैन संग्रहालय मथुरा का लोकार्पण–

१४ मई को उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री सुश्री मायावती ने राजकीय संग्रहालय मथुरा को जैन संग्रहालय के रूप में लोकार्पित किया। समारोह की अध्यक्षता श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमटी के अध्यक्ष साहू रमेशचंद जैन ने की।

दया शान्ति चेरिटेबल मेडिकल क्लिनिक–

सेवा एवं समर्पण की पवित्र भावना से निःशुल्क उपचार व चिकित्सा व्यवस्था हेतु श्री शान्तिलाल वनमालीदास शेठ फाउन्डेशन, बेंगलोर ने जयनगर, बेंगलौर में २१ मई, २००३ से दया शान्ति चेरिटेबिल मेडिकलं क्लिनिक का शुभारम्भ किया है।

श्री महावीरजी में जन शताब्दी एक्सप्रेस का ठहराव–

१. जुलाई, २००३ से कोटा से हजरत निजामुद्दीन के मध्य चलने वाली जनशताब्दी एक्सप्रेस (गाड़ी सं. २०५६) को श्री महावीरजी स्टेशन पर दो मिनट का ठहराव दिया जा रहा है। यह ट्रेन श्री महावीरजी प्रातः ८.३१ पर पहुंचकर ८.३३ पर प्रस्थान करेगी।

राजस्थान के राजभवन में लहसुन प्याज बन्द

नवनियुक्त राज्यपाल श्री निर्मलचंद जैन ने राजभवन की रसोई से पुराने बर्तनों एवं बोन चाईनीज क्राकरी को हटवा दिया तथा वहां लहसुन–प्याज का प्रवेश भी वर्जित करा दिया।

ओमान में पंजाबी जैन साहित्य का सम्मान–

वैसाखी पर्व पर सांस्कृतिक समारोह में भाग लेने मालेरकोटला (पंजाब) निवासी, दैनिक अजीत के पत्रकार श्री सुरेश शर्मा ओमान (मस्कट) गये थे। वहां उन्होंने सर्वश्री पुरुषोत्तम जैन व रवीन्द्र जैन द्वारा पंजाबी भाषा में रचित जैन साहित्य समारोह में वितरित किया। उस पंजाबी जैन साहित्य की सराहना में श्री शर्मा के माध्यम से उन जैन लेखक बंधुओं को चांदी की एक सुन्दर ट्राफी भेंट की गई।

पुण्य स्मृति–

पचेवर (टोंक) में पांचूलाल जैन अग्रवाल और कपूरी देवी जैन की पुण्य स्मृति में उनके परिवारजनों द्वारा विकलांगों को तीन ट्राई साइकिलें और असहाय महिलाओं को चार सिलाई मशीने वितरित की गईं। साथ ही दिग. जैन पार्श्वनाथ मंदिर में शांति मंडल विधान कराया गया और स्थानीय रा.उ.मा. विद्यालय में मेरिट में स्थान प्राप्त छात्र पवन कुमार को सम्मानित किया गया।

स्वयंभू पुरस्कार–२००३

वर्ष २००३ के स्वयंभू पुरस्कार के लिए अपभ्रंश से संबंधित विषय पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में रचित रचनाओं की चार प्रतियां **३० सितम्बर, २००३** तक आमंत्रित हैं। ३१ दिसम्बर, १९९७ से पूर्व प्रकाशित तथा पहले से पुरस्कृत कृतियां सम्मिलित नहीं की जायेंगी। नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप अपभ्रंश साहित्य अकादमी कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारक जी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर– ४ से प्राप्त करें।

महावीर पुरस्कार वर्ष २००३ एवं ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार २००३

महावीर पुरस्कार एवं ब्र. पूरणचंद रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार के लिए जैन धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से संबंधित किसी भी विषय की पुस्तक/शोध प्रबंध की चार प्रतियां **दिनांक ३० सितम्बर २००३ तक** आमंत्रित हैं। ३१ दिसम्बर १९९९ के पश्चात् प्रकाशित पुस्तक ही इसमें सम्मिलित की जा सकती हैं। नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप जैन विद्या संस्थान कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर–४ से प्राप्त करें।

अभिनन्दन

श्री अजित प्रसाद जैन का अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा सम्मान–

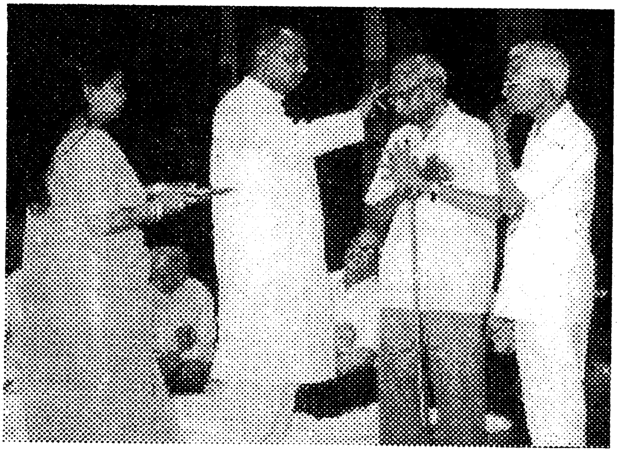

अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा दिनांक २० अप्रैल २००३ को चिन्माया सभागार, लोदी रोड, नई दिल्ली, में आयोजित सम्मान समारोह में **श्री अजित प्रसाद जैन** प्रधान सम्पादक, **शोधादर्श** (लखनऊ) तथा **समन्वय वाणी** (जयपुर) को जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिये **अहिंसा इण्टरनेशनल प्रेमचन्द जैन पत्रकारिता पुरस्कार २००२** से सम्मानित किया गया। केन्द्रीय राज्य मंत्री श्री विजय गोयल द्वारा शाल उढ़ाकर सम्मान किया गया।

इस अवसर पर महासभाध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जी सेठी ने भी उनका सम्मान किया।

श्री अजित प्रसाद जैन ने अपने संक्षिप्त भाषण में अहिंसा इन्टरनेशनल तथा उसके पदाधिकारियों का सम्मान के लिए आभार व्यक्त करते हुये कहा कि यह सम्मान उनका नहीं वरन् निष्पक्ष एवं जागरूक पत्रकारिता का सम्मान है। उन्होंने कहा कि उनकी दृष्टि में पत्रकार को न केवल पूर्ण निष्पक्षता के साथ समाचारों का विश्लेषण करना चाहिए अपितु उसे समाज एवं धर्म के सजग प्रहरी की भूमिका भी निभानी चाहिए तथा धर्म एवं समाज में पनपती विसंगतियों एवं कुरीतियों के प्रति समाज के प्रबुद्ध वर्ग को सचेष्ट करते रहना चाहिए।

८५ वर्षीय वयोवृद्ध विद्वान श्री अजित प्रसाद जी उत्तर प्रदेश शासन के सेवा निवृत्त उपसचिव हैं। वे अपनी निर्भीक एवं निष्पक्ष पत्रकारिता के लिए सुविख्यात हैं तथा सन् १९९८ में उन्हें आचार्य विमलसागर (भिण्ड) श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार से भी पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए सम्मानित किया जा चुका है। सन् १९७६ में आपने तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उ. प्र. की स्थापना अपने

कतिपय सहयोगियों के साथ की तथा उसके महामंत्री के रूप में आज तक उसकी सभी प्रवृत्तियों का संपादन समर्पित सेवा भाव से करते आ रहे हैं।

श्री जैन की धर्मपत्नी का स्वर्गवास १९९३ में तथा दोनों पुत्रों का निधन सन् २००० व २००२ में हो गया। हृदय रोग, मधुमेह एवं दृष्टिमंदता से गंभीर रूप से पीड़ित चलते हुये भी वे अपने सभी सामाजिक एवं पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन निस्पृह भाव से करते आ रहे हैं।

डॉ. शशि कांत को 'मैन ऑफ द ईयर– २००३' सम्मान–

अमेरिकन बायोग्रेफिकल इन्स्टीट्यूट ने डॉ. शशि कांत को 'मैन ऑफ द ईयर–२००३' की प्रतिष्ठासूचक उपाधि के लिये नामित किया है। यह उपाधि विश्व भर से उन व्यक्तियों की पहचान कर जिनका कृतित्व, उपलब्धियां और विशिष्ट लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रतिबद्धता उत्कृष्ट समझे जाते हैं, सम्मान सूचनार्थ प्रतिवर्ष प्रदान की जाती है।

निम्नलिखित शोधार्थियों को जैन विद्या से सम्बंधित विषयों पर पी–एच.डी. उपाधि प्रदान की गई–

क्रम सं.	**शोधार्थी**	**शोध– प्रबंध**
(क) मेरठ विश्वविद्यालय–		
१.	श्रीमती विमलेश तंवर	जयोदय महाकाव्य में अलंकरण विधान
२.	सुश्री विनु जैन	आर्यिका विशुद्धमती माताजी– व्यक्तित्व और कृतित्व
(ख) उदयपुर विश्वविद्यालय–		
३.	श्रीमती मुक्ता जैन	A Cultural study of the Bhagwati Aradhana of Sivarya

४.	ब्र. धर्मेन्द्र शास्त्री	तिलोयपण्णति का सांस्कृतिक मूल्यांकन

(ग) पूना विश्वविद्यालय–

५.	पन्यास प्रवर श्री अरुण विजय म.	तत्वज्ञान दर्शन व जगत सृष्टि स्वरूप एवं ईश्वर

(घ) आगरा विश्वविद्यालय–

६.	श्री रामनरेश सिंह यादव	हिन्दी संत परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आ. विद्यासागर के साहित्य का मूल्यांकन

निम्नलिखित मनीषियों को जैन विद्या संबंधी उनके विशिष्ट योगदान के लिए सम्मानित किया गया–

दिल्ली में –

१. श्री नीरज जैन, सतना	चतुर्थ साहू अशोक जैन स्मृति पुरस्कार तथा 'कला वारिधि' उपाधि	
२. डॉ. भागचंद जैन 'भास्कर' (नागपुर)	अ. इ. डिप्टीमल आदीश्वर लाल जैन साहित्य पुरस्कार (२००२)	
३. श्री बसंत कुमार (रायसेन)	अ.इ. भगवानदास शोभालाल जैन शाकाहार पुरस्कार (२००२)	
४. श्री सुरेशचंद जैन 'मारोरा' (शिवपुरी)	अ. इ. रघुबीर सिंह जैन जीव रक्षा पुरस्कार (२००२)	

श्री महावीर जी में –

५. श्री कस्तूरचंद जैन 'सुमन' (श्री महावीर जी)	अपभ्रंश साहित्य अकादमी स्वयंभू पुरस्कार (२००२)	
६. डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी (लखनऊ)	जैन विद्या संस्थान, जयपुर महावीर पुरस्कार (२००२)	कृति– लखनऊ संग्रहालय की जैन प्रतिमाएं : एक प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन

७. डॉ. उदयचंदजैन (वाराणसी)	ब्र. पूरणचंद रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार (२००२)	कृति– न्यायकुमुदचन्द्र परिशीलन

ओसवाल परिषद, बैंगलोर –

८. श्री ए.एन. चन्द्रकीर्ति	समाजभूषण

अहिंसा प्रसारक ट्रस्ट, मुम्बई –

९. पद्मश्री प्रतापसिंह जाधव उर्फ बाला साहेब	अहिंसा पुरस्कार

श्रवणबेलगेला मठ में–

१०. डॉ. सुदीप कुमार जैन (दिल्ली) ११. श्री पी.सी. गुडवाडे (बेलगाम) १२. श्री रतनचंद नेमिचंद कोठी (इंडी) १३. डॉ. सरस्वती विजय कुमार (मैसूर)	गोमटेश्वर विद्यापीठ २००३
१४. श्रीमती टी. वी. सुमित्रादेवी (तुमुकर)	श्री गोमटेश्वर विद्यापीठ सांस्कृतिक पुरस्कार
१५. श्री सर्वेश जैन (मूडबिद्री)	श्री ए. आर. नागराज प्रशस्तिका

श्री कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली –

१६. प्रो. ओ. पी. अग्रवाल जैन (लखनऊ)–	ब्राहमी पुरस्कार (२००२)
१७. पं. बाहुबलि पार्श्वनाथ उपाध्ये (बेलगाम)–	आचार्य भद्रबाहु पुरस्कार (२००३)

दि. जैन साहित्य संरक्षण समिति– दिल्ली (कुण्डलपुर–म.प्र. में) –

१८. डॉ. रमेशचंद्र जैन (बिजनौर)		कृति– अहिंसा

ज्ञानोदय फाउन्डेशन एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इंदौर –

१९.डॉ. अभय प्रकाश जैन (ग्वालियर)	ज्ञानोदय पुरस्कार (२०००)	कृति– जैन स्तूप परम्परा
२०. श्री सदानंद अग्रवाल (उड़ीसा)	ज्ञानोदय पुरस्कर (२००१)	कृति– खारवेल
२१. पं. सुदर्शन जैन (पिंडरई मंडला–म.प्र.)	वाग्भारती पुरस्कार (२००२)	
२२.पं. पंकज कुमार जैन शास्त्री 'ललित' (रांची)	वाग्भारती पुरस्कार (२००३)	

ऋषभांचल, गाजियाबाद –

२३.प्रतिष्ठाचार्य पं. गुलाबचंद 'पुष्प' (टीकमगढ़)–	ऋषभदेव पुरस्कार

अ.भा. जैन नवयुवक परिषद, उदयपुर –

२४. श्री ओम पारदर्शी	श्रेष्ठ रचनाकार अवार्ड (२००२)

बी.एल. इन्स्टीट्यूट आफ इंडोलॉजी –

२५. डॉ. जी. वी. तगरे–	आचार्य हेमचन्द्रसूरि पुरस्कार (२००१) (प्राकृत एवं अपभ्रंश में अवदान हेतु)
२६.डॉ. नगीनदास जीवनलाल शाह	आचार्य हेमचंद्र सूरि पुरस्कार (२००२) (जैन धर्म और दर्शन में अवदान हेतु)

■ सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर से सेवानिवृत्त **प्रो. प्रेमसुमन जैन** को वि.वि. अनुदान आयोग, दिल्ली ने एमेरिट्स प्रोफेसर फैलोशिप प्रदान की।

■ पूर्व महाधिवक्ता तथा सांसद एवं वित्त आयोग सदस्य **श्री निर्मलचंद्र जैन** राजस्थान के नये राज्यपाल नियुक्त हुए।

■ **पद्मश्री डॉ. महेन्द्र भण्डारी** छत्रपति शाहू जी चिकित्सालय विश्वविद्यालय, लखनऊ के कुलपति नियुक्त हुए।

■ **श्री विजय कुमार बड़जात्या**, आई.पी.एस., राजस्थान के पुलिस महानिदेशक नियुक्त किये गये।

■ **श्री एस.एन.जैन**, आई.पी.एस., सीमा सुरक्षा बल (राजस्थान–गुजरात सीमा) के महानिरीक्षक नियुक्त किये गये।

■ **इं. शिरीष कान्त जैन** मवाना शुगर वर्क्स में डिप्टी मैनेजर पद पर प्रोन्नत हुए।

■ **साहू रमेशचंद्र जैन** श्रीमहावीरजी में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के राष्ट्रीय अध्यक्ष पुन: निर्वाचित हुए।

■ **श्री अशोक बड़जात्या** दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

■ **श्री ताराचंद जैन (देवघर)** झारखंड राज्य के दिगम्बर जैन धार्मिक न्यास बोर्ड के प्रथम अध्यक्ष बनाये गये।

■ **वीर सुरेशचंद्र जैन**, देहरादून, जो भारतीय जैन मिलन के राष्ट्रीय अध्यक्ष व त्रिशला इण्डस्ट्रीज के चेयरमैन हैं, को ग्लोबल इकोनामिक कौंसिल व इन्टरनेशनल फ्रेण्डशिप फोरम ऑफ इण्डिया द्वारा चण्डीगढ़ में 'प्राइड ऑफ इण्डिया' अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये शोधादर्श परिवार अभिनंदन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

शोक संवेदन

८ अप्रैल २००३ को मुम्बई में एस. कुमार्स उद्योग समूह के अध्यक्ष ७४ वर्षीय उद्योगपति **श्री शंकरलाल कासलीवाल** का निधन हो गया।

२० अप्रैल को बाहुबली (कुंभोज) में बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम विद्यापीठ, कुंभोज के संचालक ८७ वर्षीय गुरुकुलरत्न **ब्र. माणिकचन्द्र जयवंतसा भीसीकर** ने सल्लेखनापूर्वक देह विसर्जित की।

२४ अप्रैल को मण्डी गोविन्दगढ़ में श्रमणसंघ–सलाहकार ८१ वर्षीय **ज्ञानमुनि महाराज** का समाधिपूर्वक देवलोक गमन हो गया।

७ जून को दिल्ली में 'सन्मति सन्देश' पत्रिका के प्रधान सम्पादक, श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के पूर्व अध्यक्ष, ८८ वर्षीय **पं. प्रकाशचन्द 'हितैषी'** का निधन हो गया।

१२ जून को बंगलौर में आचार्य **श्री विजय स्थूलभद्र सूरि म.** का समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया।

१५ जुलाई को लखनऊ में प्रबुद्ध चिन्तक–पत्रकार ८८ वर्षीय **श्री वीरनन्दन जिन्दल** (अजिताश्रम, गणेशगंज) दिवंगत हो गये।

उपर्युल्लिखित सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिरशान्ति और सद्गति के लिये जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता है, और शोक संतप्त उनके स्वजनों–परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

पाठकों के पत्र

शोधादर्श– ४६ पढ़ा। सारी सामग्री मनमुग्ध करने वाली है। जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर' विषयक रमाकान्त जी का आलेख विशेष रूप से अच्छा लगा।

–प्रकाशचन्द्र जैन 'दास', आदर्शनगर, लखनऊ

शोधादर्श– ४६ का पारायण दो बैठकों में कर गया। छन्द विज्ञान से अनुप्राणित डॉ. परमानन्द जड़िया की रचना मन को छू गई। 'जैन दर्शन में जीव का कर्तृत्व और भोक्तृत्व विचार' डॉ. सूरजमुखी जैन के गम्भीर चिन्तन का परिचायक है। **शोधादर्श** में प्रकाशित सामग्री स्तरीय, मुद्रण आकर्षक तथा निर्दोष है।

– डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया, अलीगढ़

शोधादर्श– ४६ में श्री रमाकान्त जैन द्वारा जुगलकिशोर मुख्तार साहब का जीवन–दर्शन एवं कृतित्व का प्रकाशन जैन साहित्य के अध्येताओं के लिये प्रकाश–स्तम्भ जैसा प्रेरक है। श्री अजित प्रसाद जी का सम्पादकीय 'अवर्णवाद की पराकाष्ठा' श्रमण संस्कृति के प्रतिकूल महिमामंडित उपाधियों की निरर्थकता सूचित करता है। यह गम्भीरता से विचारणीय है, अन्यथा परम पूज्य ही अपूज्य हो जायेंगे।

डॉ. जिनेन्द्र जैन का आलेख 'जैन धर्म और नैतिकता' विद्यमान संदर्भ में उपयोगी–मार्गदर्शक है। डॉ. शशिकान्त द्वारा लिखित 'जीवदया व्यवहार में' विचारोत्तेजक एवं अनुकरणीय है। श्री सुखमाल चंद जैन का आलेख सोच की नयी दिशा देता है। 'अमृत पेय–चाय' का प्रकाशन स्वस्थ जीवन को दिशा देता है, किन्तु शहद का उपयोग वर्जित होने से उसका विकल्प भी बताना चाहिये। श्री धन्य कुमार जैन के चिन्तन कण 'जीव का मरण हिंसा नहीं' पर पुनर्विचार अपेक्षित है। डॉ. ज्योति प्रसाद जी का लेख **'तथाकथित जीवन्त स्वामी प्रतिमा'** शोध की दृष्टि से उपयोगी है। 'जैन दर्शन अकर्ता–अभोक्तावादी' इसकी प्ररूपणा हेतु डॉ. सूरजमुखी को बधाई। रमाकान्त जी की व्यंग्यात्मक क्षणिकाओं की पीड़ा का समाधान पाठकों को देना है। अन्य आलेख एवं कविताएं भी दिशाबोधक हैं तथा सभी स्थायी स्तम्भ सुनियोजित, सुविचारित, सुसंगत, संक्षिप्ततायुक्त 'गागर में सागर' की लोकोक्ति चरितार्थ कर रहे हैं।**– डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई**

कच्छ से लौटने के बाद शोधादर्श–४६ देखा। अजित प्रसाद जी के संपादकीय और समाचार–विमर्श बड़े ही बेधक, मार्मिक होते हैं। शोधपरक ऐतिहासिक तथ्य भी मननीय होते हैं। रमाकान्त की क्षणिकाएं तो मधुलिपटी छुरी जैसी होती हैं। आर–पार सब कुछ निर्वस्त्र दिखाई दे जाता है।

– जमनालाल जैन, सारनाथ

शोधादर्श की अपनी एक अलग ही पहचान है। शोधार्थियों के लिये यह एक अनुपम प्रेरणा स्रोत है। **शोधादर्श** – ४६ में जैन विश्व भारती, लाडनूं से शोध कार्य करने वालों की सूची का प्रकाशन **शोधादर्श** के नाम के अनुरूप है। निर्भीक, निश्शंक समीक्षा हेतु साधुवाद। **– डॉ. रतनलाल जैन, हांसी**

यथा नाम तथा गुणः, शोधादर्श महान।
नीर–क्षीर विवेक रत, पूर्णज्ञान–विज्ञान।।

शोधादर्श– ४६ के सभी आलेख गवेषणात्मक व ज्ञानप्रदायी होने के कारण बहु उपयोगी हैं। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का आलेख 'तथाकथित जीवन्तस्वामी प्रतिमा' तथा श्री अजित प्रसाद जी का सम्पादकीय निर्भीकमना पत्रकारिता का ज्वलन्त उदाहरण है। बहुआयामी सामग्री के कारण अंक संग्रहणीय हो गया है। वस्तुतः **शोधादर्श** इतिहासप्रेमियों के लिये एक सशक्त चातुर्मासिक है।

– डॉ. रामजीवन शुक्ल, कोंच

शोधादर्श का संपादन अति सुन्दर हो रहा है। सभी लेख प्रमाणिक तथा श्रेष्ठ होते हैं। **– श्री सुनील कुमार शास्त्री, आगरा**

शोधादर्श– ४६ में विनियुक्त सभी सामग्री सार्थक और ज्ञानोन्मेषक है। **शोधादर्श** प्रारम्भ से ही इस बात के लिये सतर्क रहता आया है कि इसमें न तो कुछ निर्मूल हो, न ही अनपेक्षित। साथ ही, यह पत्रिका जैन जगत में हो रहे नव्य चिन्तन की दस्तक को भी अनसुना नहीं करती।

– डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, पटना

अंक ४६ में जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' विषयक आलेख बहुत श्रम और खोजबीन से लिखा गया एक दस्तावेज है जो मुख्तार साहब की १२५वीं जन्म जयंती पर विनयांजलि स्वरूप है। 'मेरी भावना' ने जैन समाज को अनुपम ख्याति दी है। हम उन्हें ही भूल जायें तो सरासर नाइंसाफी होगी। देश में ४०० जैन पत्रिकाएं छपती हैं, लेकिन मुख्तार साहब को उनकी १२५वीं जन्म जयंती पर आपने ही याद किया।

संपादकीय ज्वलंत एवं समसामयिक है। **शोधादर्श** की जीवंतता की यही कसौटी है। अमृत पेय चाय तो सचमुच ही आजकल पंचामृत है, पंचशील एवं पंचतत्वों का प्रतीक है। उपयोगी आलेख है। 'समाचार विमर्श' सोचने को मजबूर करता है। क्षणिकाएं धज्जियां उड़ाने में सफल हुई हैं। पाठकों के पत्र लेखकों को प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन देने में तत्पर हैं।

– डॉ. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर

शोधादर्श– ४६ में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, श्री अजित प्रसाद जी व डॉ. सूरजमुखी जैन के लेख बहुत ही विद्वत्तापूर्ण एवं सरल–सरस भाषा में हैं। पूरा

अंक पठनीय और संग्रहणीय है। जुगल किशोर मुख्तार जी पर रमाकान्त द्वारा प्रस्तुत सामग्री उनके जीवन और प्रदेय पर सच्ची श्रद्धांजलि है।

– डॉ० बारे लाल जैन, रीवा

I have gone through Dr. Shashi Kant's article on Bhaktamar Stotra in Shodhadarsh of Nov. 2002. It is indeed a learned and informative research oriented article-though brief.

- A. L. Sancheti, Jodhpur

शोधादर्श के माध्यम से जिनवाणी एवं समाज की जो सेवा की जा रही है, वह सराहनीय एवं प्रशंसनीय है।

– डॉ. शीतलचंद जैन, जयपुर

भोगीलाल लहरचंद संस्थान, दिल्ली के पुस्तकालय में **शोधादर्श** पत्रिका देखी। बेहद सामयिक, स्तरीय एवं प्रशंसनीय लगी। परिष्कृत भाषा शैली के साथ आकर्षक कलेवर ने मुझे बांध लिया और आपको पत्र लिखने हेतु प्रेरित किया। 'Art of living-Jain Life Style' मेरे शोध–प्रबन्ध का विषय है।

– कुसुम लूनिया, चन्द्रनगर (गाजियाबाद)

शोधादर्श–४८ आद्यन्त पठनीय, चिन्तनपरक, संग्रहणीय बन गया है। कविवर बनारसीदास विषयक लेख सचमुच अनूठा है। सम्पादकीय, समाचार विमर्श, समाचार विविधा, साहित्य सत्कार, पाठकीय प्रतिक्रिया जैसे स्तम्भ सुधी पाठकों, शोधार्थियों को जोड़े रखते हैं।

– श्रीमती विमला मोतीलाल 'विजय' एवं कु. रचना जैन, कटनी

शोधादर्श–४६ के गुरुगुण–कीर्तन में साहित्यकार रमाकान्त जी ने 'मेरी भावना' के अमर गायक जुगल किशोर जी का मोहक चित्रण किया है। अजित प्रसाद जी ने पूर्ववत दि. जैन धर्म पर लगातार छा रहे काले बादलों के प्रति उजला पृष्ठ खोलने की चेतावनी देते हुए तथाकथित धर्मधुरन्धरों को अपने सम्पादकीय में आगाह किया है। डॉ. शशिकान्त जी का आलेख आकर्षक व तथ्ययुक्त है। अंशु जैन 'अमर' ने डॉ. ज्योति प्रसाद जी के जन्म दिवस पर सम्पन्न कार्यक्रम की रिपोर्टिंग द्वारा उनकी स्मृति को जीवन्त बनाया है। ज्ञानवर्धक शोधादर्श वस्तुतः जन–जन का आकर्षण केन्द्र है।

– मोतीलाल जैन 'विजय' एवं मुकुल जैन, कटनी

शोधादर्श– ४६ में जुगल किशोर मुख्तार जी का जीवन परिचय प्रेरक है। जीवन्तस्वामी प्रतिमा की बात जमती नहीं। जैन संदेश शोधांक का लेख प्रकाशित कर अच्छी बात की है। जीवित स्वामी अर्थात् प्रतिमा जीवित जैसी या जीती जागती प्रतिमा होना चाहिये, यह तात्पर्य सही लगता है।

सम्पादकीय में अंकलीकर परंपरा का अवर्णवाद उघाड़कर रख दिया है। कलिकाल की मान्यता तो इस जैन धर्म में नहीं है। कलिकाल सर्वज्ञ श्वेताम्बरों में हुए हैं। यहां भी शायद उनका अनुकरण करने की होड़ हो। एक गणधराचार्य तो हैं ही। निर्ग्रन्थ मुनियों को ऐसी उपाधियां सग्रन्थ बना देती हैं व उपाधियों से स्वयं को गौरवान्वित मानना यह मिथ्यात्वी होने का द्योतक है। शायद वे इसे सही मानते हों।

साहू शैलेन्द्र जी का 'अमृतपेय चाय' लेख उपयुक्त है।

– मनोहर मारवडकर, नागपूर

शोधादर्श– ४६ पढ़ मन प्रसन्नता से भर गया। आपकी निर्भीक व स्पष्ट पत्रकारिता काबिले–तारीफ है। सम्पादकीय प्रभावक है। 'कलिकाल तीर्थंकर' की पदवी लगाकर किसी सन्त को पुकारा जाना अवर्णवाद की पराकाष्ठा ही है। 'समाचार विमर्श' में बिजौलिया प्रकरण को आपने आगमोक्त उदाहरणों से प्रस्तुत किया, एतदर्थ धन्यवाद। समझ में नहीं आता कि हमारी समाज में इतने विवाद क्यों चलते हैं– क्या इससे समाज को कोई लाभ मिलेगा? समाज, धर्म, इतिहास, साहित्य के प्रति आज निस्वार्थ भावना से कोई भी सेवा करना चाहता है क्या ? सिर्फ अपनी–अपनी रोटी सेंकने की इस सूरत को बदलना ही समाज के लिये सुखद होगा।

– पं. सुनील जैन 'संचय' शास्त्री, नरवां (सागर)

पत्रिका में लेख अनूठे होते हैं। स्पष्टतः कुरीतियों को उजागर करते हुए। मनन की सामग्री मिलती है। बिजौलिया क्षेत्र के बारे में जानकारी से बहुत बड़ी शंका का निवारण हुआ।

– साहू शैलेन्द्र जैन, खुरजा

शोधादर्श–४६ में श्री जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' की जीवन गाथा पढ़कर प्रसन्नता हुई कारण कि इसकी जानकारी शायद ही समाज को हो।

– शान्तीलाल जैन बैनाड़ा, आगरा

शोधादर्श– ४६ में भी जैन–साहित्य के भूले–बिसरे किन्तु लेखनी से अमर जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर' का जीवन–वृत्त देकर एक साहित्यकार के धर्म का सम्यक् निर्वाह किया गया है। 'अर्जुन माली' (नाटिका) की इस किश्त में भी रोचकता है। डॉ. शशिकांत के लेख 'जीव दया व्यवहार में' में उनकी संवेदनशील करुणा वृत्ति का परिचय मिलता है। क्षणिकाओं में सामाजिक विद्रूपता पर कशाघात है। डॉ. प्रचण्डिया का 'बधाई गीत', पारदर्शी की गीत–रचना तथा 'श्री वीर वर्धमान स्तवन' सुन्दर काव्य रचनायें हैं। सम्पादकीय दमदार है। अन्य लेख भी पठनीय हैं, परन्तु धन्य कुमार जैन का चिन्तन कण 'जीव का मरण हिंसा नहीं

है' समझ में नहीं आया। जीव कभी मरता नहीं है–मात्र देह **नष्ट होती है। इस** सत्य को जानते हुये भी दूसरों को पीड़ा पहुंचाना महापाप और **अधमता है। जैन** मुनि जिस अहिंसा का उपदेश करते हैं वह बहुत उच्च कोटि की अहिंसा है **जिसमें** मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी प्रकार की हिंसा का निषेध किया गया है।

– डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ

शोधादर्श– ४६ में समाहित ज्ञानवर्धक लेख, रचनायें आदि पठनीय, चिन्तनीय, मननीय एवं प्रशंसनीय हैं। सम्पादकीय में प्रस्तुत जैन समाज की सतियों द्वारा अपनी अन्धभक्ति की पराकाष्ठा पर आचार्य आदिसागर अंकलीकर को कलिकाल तीर्थंकर घोषित कर देना पढ़कर आश्चर्यचकित रह गया। जैन इतिहास में कदाचित् यह पहला अवसर है जब किसी आचार्य को मरणोपरन्त 'तीर्थंकर' सम्बोधन दिया गया। जिन–शासन में २४ तीर्थंकरों की शाश्वत परम्परा है–फिर ये पच्चीसवें तीर्थंकर कहां से पैदा हो गये? वैसे आजकल सन्यासी–सन्तों में पद एवं पदवी की भूख कुछ ज्यादा ही बढ़ गयी है। यही कारण है कि समाज टुकड़ों में बंटता जा रहा है। श्रावक समाज भी इसमें बराबर का भागीदार है।

– पारदर्शी, उत्तरी आयड, उदयपुर

अंक मिला उन्चासवां सुन्दर 'शोधादर्श',
उर अन्तर में पढ़ जिसे, छाया अतिशय हर्ष,
अभिनन्दन जिनके हुये, उनका मिला वृतान्त।
कितने विद्वत्जन गये, देकर दुःख नितान्त।।
'क्षणिकाओं' में व्यंग्य–पुट, 'रमाकान्त' जी घोल,
रखते जन–जन मध्य हैं, निज विचार अनमोल,
'अर्जुन माली' नाटिका, रोचक ज्ञानागार।
'जीव दया व्यवहार में' लेख ज्ञान भण्डार।।
'अमृत पेय' है चाय में, बहुबिधि रोग निदान।
अंक में 'शोधादर्श' का, है 'अबोध' गुण–खान।।

– दयानन्द जड़िया 'अबोध', लखनऊ

मार्च २००३ के **शोधादर्श** में गुरुगुण–कीर्तन के अन्तर्गत धर्मानुरागी जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' का परिचय सुखद अहसास कराता है। जैन साहित्य में योगदान हेतु वह स्मरणीय हैं। जीवन्त स्वामी प्रतिमा विषयक लेख में जानकारी ज्ञानवर्द्धक है। **'उत्तराध्ययन सूत्र** में तीर्थंकरों के उल्लेख और कथाएं' आलेख एक नई जानकारी प्रस्तुत करता है, 'जैन दर्शन में जीव का कर्तृत्व और भोक्तृत्व' में व्यक्त विचार गम्भीरता से मननीय हैं। 'जीव दया व्यवहार में' अहिंसा के संदर्भ में आवश्यकीय तत्व है। 'महावीर भगवान हैं' रचना चित्ताकर्षक है। बीच–बीच में

दी गई जिनवाणी और कुटेशन्स अमल योग्य हैं। साहित्य सत्कार के अन्तर्गत पुस्तकों सम्बंधी जानकारी ज्ञानवर्द्धक होने के साथ ही पुस्तकों को देखने की ललक जगाती है। शोधादर्श के अंक बड़ी सूझबूझ और दूरदर्शिता के साथ संजोये जाने के कारण संग्रहणीय होते हैं। **— मदनमोहन वर्मा, ग्वालियर**

शोधादर्श ४६ में भाई रमाकान्त का लेख जुगलकिशोर जी मुख्तार के बारे में पढ़कर अच्छा लगा।

दुर्नियति है कि हमारे मुनिगण सस्ती वाहवाही लूटने में लग गये हैं, परन्तु जब तक शोधादर्श जैसा बहादुर अखबार कायम है जैन समाज विचलित नहीं होगा, ऐसी धारणा व विश्वास है। **— जस्टिस एम. एल. जैन**

जयपुर

शोधादर्श– ४६ एक दिन में ही पूरी तरह आद्योपान्त पढ़ा। खट्टे, मीठे, कड़वे सभी आलेख सुन्दर, ज्ञानवर्धक, संग्रहणीय और स्वाध्याय योग्य हैं। सम्पादकीय व भाई रमाकान्त की क्षणिकाओं में शिथिलाचार के विरुद्ध निर्भीकता, तार्किकपूर्णता के साथ शकर लिपटी गोली में अच्छा लिखा है। गुरुगुण–कीर्तन पं. जुगलकिशोर जी की सम्पूर्ण जीवनी को भलीभांति उजागर करता है। प्रभु महावीर की भक्ति में डॉ. परमानन्द जड़िया ने अपनी रचना में हीरे जड़ दिये। सुधा जिन्दल की नाटिका की कथा पाठकों को बांधे रखती है। अमृत पेय चाय में त्याज्य अभक्ष्य चीजों शहद आदि का प्रयोग करने के लिये लिखा जाना खेदजनक है। 'मील के पाषाण' के अन्तर्गत काव्य–संध्या में सम्मिलित कवियों की रचनाओं को पूरा दिया जाना आनन्दवर्धक होता। धन्यकुमार जी का चिन्तन एकान्त चिन्तन लगा। **— महावीर प्रसाद जैन सर्राफ**

शाकाहार प्रचारक, नई दिल्ली

शोधादर्श — ४६ में साहू शैलेन्द्र कुमार का लेख 'अमृत पेय चाय' पढ़ा। उसमें उन्होंने चाय की पत्ती के बारे में लिखा सो उनके विचारों में ठीक होगा। लेकिन मेरे विचारों से जैन पत्रिका में चाय के बारे में लिखा सो ठीक नहीं है क्योंकि आचार्य व मुनिराजों द्वारा चाय को नशीली व अशुद्ध जानकर हेय व छोड़ने का संकल्प कराया जाता है और लेख में आगे शहद के उपयोग के बारे में लिखा है। जैन ग्रन्थों के अनुसार १ शहद की बूंद खाने से ७ हजार गांव जलाने के बराबर हिंसा होती है। जैन पत्रिका में शहद के उपयोग की बात नहीं छापनी चाहिये।

— ताराचंद जैन अग्रवाल, पचेवर

शोधादर्श– ४६ पत्रिका एक बार पूरी उलट कर अवलोकित करने के बाद उत्सुकता मिट सकी। 'कलिकाल तीर्थंकर' जैसी अनर्गल उपाधियों के मोहग्रस्त

हमारे साधु कितनी आधि–व्याधियों से अपने को लपेटते जा रहे हैं। न जाने इनका अन्त कब और कैसे होगा? आपका विवचेन सौ टंच शुद्ध है।

अष्ट मूलगुण जैन धर्म के अनुयायियों की पहचान है जिसमें एक मधु (शहद) का त्याग भी है। जाने कैसे **शोधादर्श** में प्रकाशित साहू शैलेन्द्र कुमार जैन के लेख 'अमृत पेय–चाय' में शहद सेवन का अनुमोदन किया गया है। हमें अपनी पत्रिकाओं में सिद्धान्त–विरोधी खान–पान के प्रचार से बचना चाहिये।

– लालचंद्र जैन, टिकैतनगर

शोधादर्श– ४६ में भाई रमाकान्त जी ने आदरणीय जुगलकिशोर जी का प्रामाणिक परिचय दिया है। वह भविष्य में इतिहास लेखन में बड़ा सहायक सिद्ध होगा।

परन्तु पृष्ठ ४६ व ४८ पर श्री शैलेन्द्र जी ने शहद की वकालत की तथा पृष्ठ ३० पर भाई शशिकांत जी के इस कथन कि 'मुर्गी अण्डा देती है', से जैन धर्म का कहां तक व्यापक प्रसार हो सकता है? इस पर विचार करें।

– डॉ. कुन्दनलाल जैन, शाहदरा (दिल्ली)

(सर्वश्री महावीर प्रसाद जैन, ताराचंद जैन, लालचंद्र जैन और डॉ. कुन्दनलाल जैन के पत्रों में व्यक्त आपत्तियों के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण–

पूर्व अंकों की भांति **शोधादर्श–** ४६ के अन्तिम आवरण पृष्ठ पर भी यह स्पष्टतया उल्लिखित है कि **"लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।"**

जहाँ तक 'मुर्गी अण्डा देती है' कथन का सम्बन्ध है, यह एक सामान्य कथन है न कि अण्डा खाने की वकालत।

शहद का उल्लेख आयुर्वेद में एक अति गुणकारी औषधि–द्रव्य के रूप में किया गया है तथा आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण/अनुपान में इसका प्रचुर उपयोग किया जाता है। शहद के उत्पादन में हिंसा भी कदाचित् नहीं होती। फिर भी जैनाचार्यों ने इसका निषेध क्यों किया, इस पर शोध किया जाना अपेक्षित है। आयुर्वेदिक औषधियों का उपयोग तो त्यागी व्रती भी रोगशमन के लिये करते हैं। वैसे 'मधु' का अर्थ 'महुआ' भी होता है जिसके ताजे रस से ताड़ी बनती है जो अल्प समय में ही मादक हो जाती है पर उसकी गिनती मदिरा में नहीं की जाती। प्राचीनकाल में महुए से बनने वाली शराब माध्वी कहलाती है थी तथा बड़ी लोकप्रिय भी थी। जहां महुए के पेड़ बहुतायत में हों वह वन प्रान्तर 'मधुवन' कहलाता है। कदाचित् प्राचीन जैन आचार्यों का आशय 'मधु से 'महुए' का ही रहा हो, यह शोध का विषय है। – प्रधान सम्पादक)

शोधादर्श का मार्च २००३ का अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका को सुन्दर एवं आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए बधाई। प्रस्तुत अंक में 'जीव दया व्यवहार में', 'अर्जुनमाली नाटिका' एवं 'अमृत पेय' ज्ञानवर्धक, उपयोगी एवं विचारपूर्ण लगे। डॉ. परमानंद जड़िया की कविता महावीर भगवान हैं एवं बधाई गीत कविताएं सरस एवं सरल भाषा में प्रस्तुत की गई हैं। परन्तु पाठकों के पत्र में जस्टिस एम. एल. जैन द्वारा अपने पत्र में व्यक्त किए गए विचार अनावश्यक व अटपटे लगे। यह टिप्पणी कि 'ये धर्म रथ को खींचने वाले बैल नहीं सांड हैं। पुष्पदंतसागर जी की भी मूर्ति बनाकर उसका लांछन अलसेशियन ? रखना भी अवश्य ही उचित होगा' कुत्सित विचारधारा एवं दूषित मानसिकता का प्रतीक है।

– रोहित कुमार जैन, लखनऊ

(पाठकों के पत्रों में व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं जिनसे सम्पादक मंडल को कुछ लेना देना नहीं होता है। राजस्थान व दिल्ली उच्च न्यायालयों के सेवानिवृत्त न्यायाधीश वयोवृद्ध (८१ वर्षीय) जस्टिस एम. एल. जैन एक गंभीर चिन्तक एवं धर्म शास्त्रों के गहन अध्येता हैं तथा पिछले ५०–६० वर्षों से जैन धर्म व जैन समाज से सक्रिय रुप से जुड़े रहे हैं। वे श्रमणाचार में दिन प्रतिदिन बढ़ते शिथिलाचार से बहुत चिन्तित एवं व्यथित रहते हैं। विगत कुछ महीनों से वे गंभीर रुप से बीमार चल रहे हैं। अन्यथा श्री रोहित कुमार जी की आपत्तियों का वे स्वयं निराकरण करते। फिर भी हम इन आपत्तियों के विषय में स्थिति कुछ स्पष्ट करना चाहेंगे।

सांड– वामन शिवराम आप्टे के **संस्कृत–हिन्दी कोश** में ऋषभ, वृष वृषन् और वृषभ शब्दों का अर्थ 'सांड' दिया है। **लोक भारती प्रामाणिक हिन्दी कोश** में 'बैल' का अर्थ 'गौ जाति का बधिया किया हुआ वह नर चौपाया जो हलों और गाड़ियों में जोता जाता है' और 'सांड' का अर्थ 'केवल सन्तान कराने के लिये पाला हुआ गौ का नर' दिया हुआ है, तथा 'बधिया' का अर्थ है 'वह पशु जिसका अंडकोश निकाल दिया गया हो'। अर्थात् वृषभ वीर्यवान सांड है न कि बधिया किया हुआ बैल, और धर्मरथ खींचने में वृषभ ही समर्थ है। इसीलिये आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव का लांछन भी वृषभ ही सूचित किया गया है।

अलसेशियन गाड–आचार्य पुष्पदंत सागर जी के ही एक परम भक्त श्री अरविन्दकुमार जैन (कोलकाता वासी) ने उन्हीं की पत्रिका **'पुष्प वार्ता'** में लिखा है– 'हमारे गुरूवर्य जैन समाज के एलसेशियन गाड हैं।' **प्रधान सम्पादक)**

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासंभव लेख ३-४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

- प्रधान सम्पादक

❑ ❑ ❑